कम्यूनिज्म क्या है ?

लेखक
राधामोहन गोकुलजी

फरवरी सन् १९२७

मूल्य १० आना

❀ विषय सूची ❀



पुस्तक मिलने का पता—

सोशलिस्ट बुकशाप

पटकापुर, कानपुर

मुखबन्ध।

अभी तक हमारे देश वासियों को केवल कम्यूनिज्म या बोलशेविज्म का नाम ही सुनने में आया है या वह बातें सुनने में आई हैं जो कम्यूनिज्म के घोर विरोधियों ने उसके सम्बन्ध में फैलाई हैं। इसलिए जब तक उन्हें कम्यूनिज्म का पूरा पता न लग जाय कि वह क्या है, वे कोई राय नहीं कायम कर सकते। सुतरां, दूसरे पक्ष कम्यूनिज्म का असली रूप बिना अपनी ओर से नमक मिर्च लगाये बिल्कुल विज्ञान इतिहास और वास्तविक घटनाओं के आधार पर दिखला देना मैंने अपना कर्तव्य समझा।

मैंने कार्लमार्क्स, फ्रीडरीक एञ्जिल्स, प्राउढन, लेनिन और जीनोवीफ के लिखे लेखों और छोटे मोटे ग्रन्थों को पढ़ा है, परन्तु इस प्रबन्ध में मैंने अधिकांश सहायता 'बुखारिन' और दो एक अंग्रेज कम्यूनिष्टों के लेखों से ली है। यह भी अपने दायित्व को पहचानने वाले और कम्यूनिष्ट पार्टी के नेता थे या हैं। इनके लेखोंका सार पढ़नेके बाद यह सन्देह नहीं रह सकता, कि मैंने कम्यूनिष्टों के विचार कम्यूनिष्टों के मुंह से नहीं सुना इसलिए न जाने कम्यूनिष्ट कौन हैं, कम्यूनिज्म किसे कहते हैं, उसका प्रादुर्भाव क्यों हुआ?

भारतवर्ष कम्यूनिज्म के लिए तय्यार है या नहीं, कम्यूनिज्म अच्छा है या बुरा, इस बात का निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

यहां इतना और बतला देना जरूरी है कि किन किन अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार किस किस अर्थ में हुआ है और जहां जरूरी हो उसका सूक्ष्मतम इतिहास दो चार शब्दों में बतला दिया जाय, अस्तु.–

कम्यूनिष्ट--वह व्यक्ति है जो कम्यूनिज्मके सिद्धान्तका मानने वाला हो।

कम्यूनिष्टिक-कम्यूनिस्ट सम्बन्धी।

कम्यूनिज़्म-कुटुम्बता, वसुधैव कुटुम्बकम् का जीता जागता आदर्श।

बोलशेविज़्म-साम्यवादी दल जो पहले स्थापित हुआ था, उसके लक्ष्य भ्रष्ट हो चलने पर कम्यूनिष्ट दल तय्यार हुआ। सन् १९०३ में इस पार्टी में भी मतभेद हो कर दो दल हुए, तो बहु मतानुयायी बोलशेविक और अल्प मतानुयायी मेनशेविक कहलाये।

इन्हीं दोनों शब्दों से दो भाव वाचक संज्ञायें बनीं-बोलशेविज्म और मेनशेविज्म अर्थात् बोलशेविक सिद्धान्त व मेनशेविक सिद्धान्त।

केपीटेल-पूंजी, धन।।

केपीटेलिस्ट स्टेट-धनिक शासित राज्य। क्योंकि वर्तमान शासन में सर्वत्र धनिकों की इच्छा को प्रधानता मिलती है। इस पुस्तक में केपीटेलिस्ट के लिए 'सम्पन्न' शब्द का व्यवहार किया गया है

प्रोलाटेरियट-के लिए यहा श्रमिक शब्द काम में लाया गया है। इस में किसान कारीगर और सब तरह के मजदूर अर्थात् गरीब अधिकार विहीन लोग शामिल हैं।

बूर्ज वावर्ज-अधिकार प्राप्त धनवानो को कहते है, इसके लिए मैंने अभिजात शब्द लिखा है।

मैंने कोशिश की है कि कम्यूनिस्टक विचारों के अनुसार जीवन के हर अङ्ग पर, समाज की हर एक संस्था पर, रीति रिवाज, चाल व्यवहार पर प्रकाश डालूं, लेकिन यह कहना मेरे लिए कठिन है कि मैं कहा तक अपने अभीष्ट को सिद्ध कर सका हूँ।

कम्यूनिजम क्या है? इसी प्रश्न का उत्तर इस निबन्ध में सरलतम भाषा में देने का उद्योग किया गया है, इस लिए इस निबन्ध का नाम भी मैंने "कम्यूनिज्म क्या है?" रक्खा है।

भूमिका कई उद्देशो से लिखी जाती है, मैंभी चाहता तो उन्हीं में से किसी एक को या ज्यादा को लेकर लिखता। लेकिन यह समझ कर कि यह छोटा सा निबन्ध स्वतः एक भूमिका है, मैं इन्हीं थोड़े से शब्दों पर सन्तोष करता हूँ।

लेखक-

कम्यूनिज्म क्या है?

पहला अध्याय.

विषय प्रवेश ।

ससार में दिनो दिन दुखियों और दीनों की वृद्धि होते देख जिस तरह भगवान बुद्ध का हृदय पसीजा था उसी तरह १९ वीं शताब्दि में भगवान कार्लमार्क्स का जी गरीबों के दुख से दुखी हुआ। इन्होंने भगवान बुद्ध की तरह अन्धकार मय वैचारिक ससार में अपना समय लगाकर और वस्तु स्थिति को पहिचान कर प्रत्यक्ष जगत में काम करना अपना लक्ष्य बनाया। उन्होंने अपना जीवन शाब्दिक अध्यात्मवाद में बिताया। इन्होंने प्रत्यक्ष जगत में जान डाली। दोनों के कारनामें और दिये हुए कामों के नमूने ससार के सामने हैं, विवेक दृष्टिसे जोचाहे देख सकता है।

कौन नहीं जानता कि भूमण्डल के निवासी जन समुदाय में सम्पन्नों की एक मुट्ठी सख्या है शेष पृथ्वी विपन्नों के आर्तनाद से गूंज रही है। चारों ओर रोटी के झगडे की प्रचण्ड अग्नि मनुष्यत्व को भस्म किये डालती है। फिर जो थोडे से सम्पन्न है उनमें भी विलासिता के लिए एक दूसरे का धन छीनने का

वल प्रयत्न चल रहा है। इन सब बातों का विस्पष्ट रूप रग
स निबन्ध में आगे चलकर देखने को मिलेगा। हमें तो भगवान
यास का एक वचन याद आता है, यदि कम्युनिज़्म से उसकी
र्ति होती हो तो अच्छा ही है।

श्रूयता धर्म्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्य्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा नं समाचरेत् । व्यास ।

इसी को व्यास से अनुमान २५०० वर्ष पीछे महात्मा मसीह
ने दुहराया Do unto others as you would they should
do unto you इसी की रूह खींच एक राजनैतिक लेखक ने
नई शीशी में भरकर यों पेश की—

Except Government by the people for the
people, all sorts of Governments in general and
foreign government in particular are Governments
by dacoits and robbers यदि इस वाक्यमें से in general
से लेकर Particular शब्द तक निकाल दिये जाय तो यह रूह
और भी विशुद्ध और पवित्र हो जाती है। क्योंकि जनता अपने
हित के लिए अपना शासन आप करे तभी सच्ची स्वतन्त्रता
और सच्चा सुख हो सकता है।

सर्वं पर वश दुखम् सर्वं आत्मवश सुखम्।

किन्तु जनता का अर्थ एक मुट्ठी अधिकार प्राप्त धनिक और
उनके भाड़े के सहायकोंका नाम नहीं है। सृष्टि की मानव जाति

मात्र का नाम जनता है। यही कम्यूनिज़्म का सुनहला सिद्धान्त है। यही भगवान् मार्क्स के साम्पत्तिक सिद्धान्तका महामन्त्र है।

वर्तमान सम्पत्ति शास्त्र के ज्ञाता पण्डित कहते हैं कि अमुक देश का धन बढ़ गया इसलिए कि उसमें थोड़े से (एक मुट्ठी) लोगों के पास सोने, चान्दी, अन्न और वस्त्र का अटूट भण्डार है। कम्यूनिस्ट कहता है यह तार्किक भूल है, तर्क छल है (fallacy है, sophistry है)। देशमें जब गरीबों की संख्या बढ़ रही है तब देश का धन बढ़ना कैसे ठीक माना जाय। अस्तु पाठक गण सावधानी के साथ, विचार शीलता से, धैर्य्य से इस छोटे से निबन्ध को पढ़ें और कम्यूनिस्टों की भूलों को या बुराइयों को और भलाइयों को एक ओर रखें और प्रचलित शासनों की बुराइयों, भलाइयों को दूसरी ओर, फिर तौल कर देखें, कौनसा शासन अच्छा है। कम्यूनिस्ट के वादानुवाद का प्रधान विषय रोटी है। इसमें कमली (rags) और दुशाले (cricks) का झगड़ा है, मोती और बिनौले की लड़ाई है।

मनुष्य अपनी आदत से लाचार हो जाया करता है, हमारे वयोवृद्ध पूज्य नेता सर सुरेन्द्रनाथ महोदय तक को भारत का उद्धार वर्तमान कौंसलों द्वारा दीखता था। भारत के प्रिय पूज्य नेता भगवान गांधी को भारत के कोटि २ भूखों का पेट एक मात्र चर्खे सेही भरता नजर आताहै। हमारे धर्म्म प्राण भ्राताओं को २६८००००० विधवाओं की ओर से आंख बन्द करने में ई

धर्म का आदर्श और मुक्ति दिखलाई देती है। इसी तरह हमारे देश के विपन्नों को भी यह कहकर सन्तोष हो जाता है कि.—

कोउ नृप होहु हमें का हानी। चेरी छाड़ि न होबै रानी॥

कम्यूनिज्म उद्योग शीलता की शिक्षा देने वाला महामन्त्र माना जाता है, इसे एक बार पढ़कर देखें तो यह चीज क्या है? योरोप और अमरीका के धनवानों के कहने के अनुसार यह कोई हव्वा तो नहीं है? यदि है तो सावधान हो जावें, यह कहीं एक दिन हमें भी न आदबाये।

अन्त में हमारी नम्र प्रार्थना है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष जो थोड़ा भी पढ़ना जानता हो एक बार इसे अवश्य पढे और पढ़ चुकने के बाद दूसरों को पढ़ने को दे, पढ़कर सुनावे और कम्यूनिज्म की बुराइयों या भलाइयों से स्वयम् परिचित होकर औरों को भी परिचित करे।

कम्यूनिस्ट किसी का बुरा नहीं चाहता, वह चाहता है कि संसार के सभी मनुष्य सुखी रहें, इनमें से परस्पर विरोध और वैमनस्य के कारण, जो मनुष्यों की भूल से पैदा हो गये हैं, मिट जाय। लेकिन समस्त संसार की हित-कामनासे उद्योग करने में जो थोड़े से स्वार्थान्ध लोगों को कष्ट प्रतीत हो तो इसका कोई इलाज नहीं। मार्क्स की एक बात याद रखने के योग्य है, वह कहता है कि 'पूँजीपतित्व अपनी समाधि आप खोदता है, इसके फल पुर्जे बिखरने ही वाले हैं और इनको श्रमजीवियों

की बगावत विखेरेगी और संसार को अभिनव साचे में ढालेगी।'

जिसको सच्चा कम्यूनिस्ट बनना हो वह कम्यूनिस्टों के 'प्रोग्राम' को ध्यान से पढ़े, समझे और तदनुसार काम करे। इस निबन्ध में तो उनके गुण दोषों के परिचय कराने के लिए उनके अनुशासन का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। पूंजीपतियों के शासन काल के रूस से वर्तमान सोवियट सरकार की तुलना करने के लिए पूरी बातों के लिखने का न स्थान, न समय, न अवसर।

कम्यूनिस्ट समझता है कि प्रत्येक पदार्थ जो पैदा किया जाता है माल नहीं कहलाता। जो वस्तु पैदा करने वाला या बनाने वाला अपने खर्च के लिए बनाता या पैदा करता है वह तो उपभोग्य है। हां, जो बहुत सा सामान बेचने के लिए बनाया जाता है उसकी संज्ञा माल है। इस माल को जो कोई खरीदता है वही उसका मालिक है। इसी के साथ साथ प्राइवेट (निजू) स्वामित्व का भाव प्रादुर्भूत होता है। स्वतन्त्र कारीगर अपने औजारों से अपने कारखाने में थोड़ा माल तय्यार करता है और बड़े २ कोठीवाल कल कारखानों आदि से अधिक माल तय्यार करते हैं, इस तरह दो माल तय्यार करने वालों में खरीदारों के लिए झगड़ा और माल के दामों में होड़ा होड़ी होती है। इसी को ज़रा विस्तार के साथ विचार करें तो मालूम हो सकता है कि

बाजार में बेचकर धनवान होने के लिए माल की तय्यारी करना सारे फसाद की जड़ है।

जो ज्यादा माल बनाकर सस्ता बेच सकता है वह अनेकों कम माल बनाने वालों को तबाह कर डालता है, क्योंकि इन गरीबों का माल महगा पड़ता है। क्या कोई कोरी या जुलाहा मिलों के मुकाबले में ठहर सकता है? तमाम बैल गाड़ी घोड़ा गाडी, ऊंट वालों आदि को सत्यानाश करके थोड़े से रेलवे कम्पनी के हिस्सेदार मालामाल हो जाते हैं।

इसी तरह गरीबों का काम छिनता जाता है वे भूख मरने लगते हैं तब मजदूर बनकर उन्हीं धनवानों के कारखानों या दुकानों में जाकर नौकरी ढूंढते हैं। जो बेचारे दो हाथोंकी बदौलत स्वतन्त्रता के साथ कमाखाते थे, सुख की नींद सोते थे वे आज मिलों में मालिक से मजूर बनकर गुलामी करते हैं।

सार यह कि थोडे से सम्पन्नों के पास घरबार, हाट हवेली, कल्कारखाना, सोना चाँदी, सब कुछहै और जनता अर्थात् विपन्न जन समूह के पास सिवा दो हाथों के और कुछ भी नहीं। सारे कामों का 'इजारा' (monopoly) वनिक समाज ने लेलिया और करोड़ों प्रजा भूखों मरने लगी। अब इसे मजूरी के सिवा जीने का कोई मार्ग ही नहीं रहा। जिस तरह लोग पशुओं को दाना चारा देकर उनसे मनमाना काम लेते हैं, उसी तरह इन बचारे मजदूरों को भी जीवित रखने के लायक कुछ थोड़ासा देकर रात दिन काम में जोते रहते हैं। यह सच है कि अब पहले

की तरह दास बिकते नहीं, पर मजदूरी की दशा क्रीतदासों की सी ही है और कहीं २ रूपान्तर और नामान्तर से अब तक दास खरीदे बेचे जाते हैं। हमारे देश वासियों को मिरच का मुल्क, हॉडूरास डमरा, खास कर 'केनिया' और आसाम, फीजी का किस्सा अभी भूला न होगा। अब अगर मानलें कि मजूर खरीदे बेचे नहीं जाते तो उनकी काम करने की शक्ति खरीदी जाती है। एक आदमी को प्रभात से सायंकाल तक काम कराकर ।≈) ॥) या ॥≈) देने का यही तो अर्थ है।

मजूर दुख पाते हैं, पेट की ज्वाला उन्हें काम करने को मजबूर करती है। मालिक से कहा जाय तो वह कहदेगा, 'तुम्हारा जी चाहे तो काम करो नहीं तो चले जावो, मुझपर क्या अहसान है, मैंतो तुम्हें काम देता हूँ तुम न करोगे तुम्हारा भाई दूसरा आकर करेगा।' इसतरह गरीब आदमी का श्रम भी एक बाजार में बिकने वाला माल बन गया है। ज्यों ज्यों गरीबों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों त्यों इस माल का दाम (मजूरी का दर) घटता जाता है। इसतरह बिभुक्षितों की संख्या दिन दिन बढती जारही है।

वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों की वृद्धि के साथ साथ सारे काम बिजली, स्टीम आदि साधनों से होते जाते हैं, थोड़े आदमियों द्वारा थोड़े समय में बहुत सा काम होजाता है या बहुत सा अभीष्ट पदार्थ तय्यार होजाता है और सस्ता बिक सकता है, इसी काम के अलग अलग करने वाले आदमी

वे रोजगार होते जाते हैं और धन जो लाखों आदमियों के हाथ में जाता था सिमट २ कर १००-२०० लोगों की थैली में पहुँच जाता है। यह सब शासन पद्धति का दोष है। यह कम्यूनिष्टों का मत है। वे शासन पद्धतिको और साम्पत्तिक स्वत्व की प्रथा को बदल कर ऐसा बनाना चाहते हैं जिससे कोई भूखा न रह सके। उनका दावा है कि सोवियट सरकार (श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सभा)में न कोई लूला लंगड़ा भूखा रह सकताहै, न कोई बीमार बिना दवा के रह सकता है, न कोई लड़का रुपया न होने के कारण शिक्षा से वञ्चित रह सकता है। आज कल हम जो दृश्य देखते हैं कि थोड़े से आदमी बड़ी २ हवेलियों में रहते हैं और कितनेही भीख मागते फिरते हैं, सड़कों पर सोकर रातें काटते हैं, बिना अन्न वस्त्र भूख और ऋतु की क्रूरता से मरे जाते है,यह सब सोवियट शासन में देखना नहीं पड़ता। यह कैसे होता है इसका सूक्ष्म विवरण देना भी इस निबन्धका एकप्रधान उद्देश है।



दूसरा अध्याय.

कम्यूनिज्म ।

पूंजीपति-शासन का विनाश अवश्यम्भावी है। अबतो यह हमारी आखों के सामने मरणोन्मुख हो रहा है। इसके नाश के दो मूल कारण हैं। एक ओर माल के पैदावार की गदर जिससे क्रय विक्रय की होड़ा, होड़ी रुपये के बाजार का विप्लव और युद्ध होते ही रहते हैं, दूसरी ओर सामाजिक भेदभाव.—

एक दरिद्रभिक्षुक दूसरा धनकुबेर।

जिसके कारण धनिकों और श्रमिकों की लड़ाई कभी बन्द ही नहीं हो सकती, दोनों चूहे बिल्ली की तरह एक दूसरेके शत्रु बने रहते हैं। पूंजीप्रधान (धनिक) समाज उस कल (machine) की तरह है जिसका एक अंग सदा दूसरे अंग के काम में बाधक बना रहता है, फिर भला ऐसी बेतुकी मैशीन आज हो या कल टूटे बिना कैसे रह सकेगी।

अब सोचना यह है कि जब कभी यह पूंजी प्रधान समाज नष्ट भ्रष्ट होजाय तो इसकी भस्मसात् चिता पर ऐसी दृढ़ और पक्की समाज पद्धति की नींव डाली जाय जो पहिली तमाम खरा-त्रियों से बरी हो।

कम्यूनिस्ट के वस्तुओं के बनाने या पैदा करने की रीति में कुछ खास बातों कीजरूरत होगी। पहिले तो समाज खण्ड खण्ड

नहो वल्कि खूब सगठितहो, उसके अगों में सामञ्जस्य हो, चीजों के बनाने या पैदा करने में गदर न मचे, जुदा २ उद्यम करने वालों में होडा होडी की आग न जल सके, युद्ध की नौवतें न आवें न रुपये के बाजार में घातक प्रश्न खड़े हों।

पैदावार की गदर मिटाने से हमारा अभिप्राय है कि खपत से अधिक माल न बनाया जाय जिसके बेचने के लिये दूसरों से मुकाबला करना पड़े। बिक्री के लिए बाजार हाथ में करने के युद्ध करने पड़ें, माल का दर घटा कर छोटे कारीगरों या कारखाने वालों को नुकसान पहुँचाना पड़े, कारखानों को कुछ समय के लिये बन्द कर के मजदूरों को इस लिये कष्ट में डालना हो कि हमारा स्टाक निकल जाय तब और काम करें।

दूसरे, समाज में भेद भाव नहीं, सब एक समान भाई, एक दूसरे के हित चिन्तक और सहायक हों। एक दूसरे के स्वार्थ में विरोध होना ही झगड़े की जड़ है। मजदूर कहेगा कि मजदूरी अधिक मिलनी चाहिए जिससे वह आराम के साथ रह सके, पूँजी पति चाहेगा कि कम से कम मजूरी में ज्याद से ज्याद काम लेकर मैं और भी बड़ा धनपात्र बन जाऊ, तो पारस्परिक द्वन्द्व युद्ध बनाही रहेगा और समाज कदाचित सुखी न हो सकेगा।

कम्यूनिस्ट चाहता है कि उसके संगठित समाज की बुनियाद सामाजिक प्रभुत्व पर रक्खी जाय। समाज ही उन कुल कारखानों, गोदामों ओर भाण्डारों का मालिक हो जिनमें चीजें

बनती है, पैदा होती है, रखी जाती है और फिर खर्च के लिए एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती है। यह सारे साधन किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति न रहें। कल पुर्जे, रेल, जहाज, आकर, तार, डाक, धरती, पशु पक्षी सभी चीजों का मालिक समाज हो न कि यह साहूकार और वह कम्पनी। इस दशा में समाज देख लेगा कि उसे कितने अन्न, कितने कपड़े की जरूरत है और उसी के अनुसार अनुमान बांध कर चीजें पैदा करेगा और सारे समाज की जरूरतों को पूरा कर देगा। इस से पैदावार का गदर मिट जायगा।

इस व्यवस्था के लिए अवस्था भी ठीक बनानी होगी। समाज के सभी सदस्यों को मिलकर एक सर्व संयुक्त संगठन करना पड़ेगा। आज कल की पूंजी पतियों की पद्धति जिससे निर्धन मजूर किसान वगैरह लुटते हैं बन्द करनी होगी, तभी सामाजिक भेद भावों की अन्त्येष्टि हो सकेगी। पर केवल संगठन से काम नहीं चल सकता। उदाहरण के लिए मानलो पूँजीपतियों ने मिलकर काम किया, सब चीज पर अपना आधिपत्य रक्खा और पूँजीपतियों की आपस की होड़ा होड़ी (Competition) मिट गई तो इसमें लागत के ऊपर जितना भी नफा होगा मजदूरों से छिन कर पूँजीपतियों के पास हिस्सा रसदी चला जायगा, इससे उन गरीबों का क्या लाभ होगा जो घृणित गुलामी की दशा को पहुँचाए जा चुके हैं।

इस तरह पर काम के संगठित होने पर भी गरीब मजदूरोंका

लुटना वन्द न होगा। यह बात कम्यूनिज्म नहीं चाहता। यह तो केवल पूँजीपतियों का सम्मिलित स्वामित्व हुआ न कि सारे समाज का, जिसमें मजदूर, कारीगर, किसान सभी शामिल हों। इससे पैदावार की गदर और पूँजीपतियों की आपस की लड़ाई चाहे कुछ, वन्द हो जाय किन्तु मजदूरों और पूँजीपतियों के झगड़े का अन्त नहीं हो सकता। क्योंकि यह तो बराबर लूटते ही रहेंगे और वह लुटते ही रहेंगे तो झगड़ा कैसे मिटेगा। कम्यूनिस्ट समाज केवल पैदावारका प्रबन्ध नहीं करना चाहता, वह प्रजा को दूसरे के अत्याचारों से बचा देना चाहता है। कम्यूनिस्ट आद्योपान्त हर एक बात का सुसगठन चाहता है।

कम्यूनिज्मके अधीन काम होने पर कारखानोंमें स्थायी प्रबन्ध कर्ता न रहेंगे, ऐसा न होगा कि एक आदमी एकही तरह का काम सारी उम्र करता रहे। यह तो पूँजीपतियों के आधिपत्य में हुआ करता है। कम्यूनिज्म हर एक व्यक्ति को कई कई तरह के काम सिखलाना चाहता है, एक आदमी को कई तरह के पैदावार के काम में योगदान करने के योग्य बनाता है। जो आज प्रबन्ध कर्ता बन कर यह हिसाब लगाता है कि अगले महीने में कितने थान गर्म कपड़े बनाने की जरूरत है वही कल लोहे के फिर साबुन के कारखाने में काम करता मिलेगा। यह तभी हो सकता है जब समाज के सब सदस्यों को समुचित शिक्षा दी जाय।

कम्यूनिस्ट चीजों को अपने खर्च के लिए बनाता या पैदा

करता है, वह बाज़ार में बेंचने के लिए माल पैदा करने की चिन्ता भी नहीं करता। इस लिए कम्यूनिस्ट माल नहीं तय्यार करता जरूरत का, उपभोग्य पदार्थ बना लेता है और सन्तुष्ट रहता है। कम्यूनिस्ट के बनाये या उपजाये पदार्थों का न तो विनमय (अदल बदल जैसे रुई देकर गुड लेना, चना देकर तेल खरीदना इत्यादि) होता है न उनका क्रय विक्रय ही होता है। समस्त कम्यून (कुटुम्ब) मिल कर काम करते हैं, पदार्थ पैदा करते हैं और मिलकर ही उसका उपभोग भी करते है। यह लोग जितना सामान तय्यार करते हैं, खदान से निकालते हैं या खेतों में पैदा करते हैं, सब एक भाण्डागार में रख देते है और जिसे जितनी जरूरत होती है दे देते हैं। इस दशा में सोने चांदी के सिक्कों (धन दौलत) की भी कोई जरूरत बाकी नहीं रह जाती।

यहां शंका हो सकती है कि यह कैसे सम्भव है? किसी को बहुत कम सामान मिलेगा और किसी को कहीं अधिक, यह तो विभाग ठीक नहीं होता। इसके उत्तर में कम्यूनिस्ट कहता है कि प्रारम्भ में निस्सन्देह कुछ दिन १० वर्ष हों या २० वर्ष हम इस बात के लिए कई तरह के कानून कायदे रखने पड़ेंगे। बाजा २ चीजें हो सकता है कि उन्हीं लोगों को दी जाय जिनकी कार्यवाही में खास 'कलम' रखी गई हो, या जिनके काम फर्दगी के पुर्जे में लिख दिया गया हो। जब हम दलका पूरा २ सगठन हो जायगा तब ऐसे नियमों की जरूरत न,

रहेगी। सब पैदावार का काफी प्रमाण रहेगा और जिसे जितनी चीज की चाह होगी उसे उतनी ही मिलेगी जरूरत से ज्याद, लेने से उनका कुछ लाभ न होगा इसलिए वे लेंगे ही नहीं। कौन ऐसा मूर्ख होगा जो रेल में ५ टिकट खरीद ले और सिर्फ दो आदमी बैठें ३ की जगह खाली पड़ी रहे ? जब कम्यून के हर आदमी को एक समान सब भोग्य पदार्थ बिना रोक टोक मिलेंगे तो कोई ज्याद. लेकर क्या करेगा ? जो चीज बिक नहीं सकती उसे केवल फेंकने के लिए तो पागल ही ले सकता है। हम कह चुके हैं कि रुपये का कोइ मूल्य न रहेगा न चीजों का परस्पर अदल बदल हो सकेगा क्योंकि सब पदार्थ सबको अटूट संयुक्त भण्डार से इच्छा अनुसार मिलता रहेगा। प्रारम्भ में काम के अनुसार ही पदार्थ मांगने वाले को दिया जायगा, फिर कुछ दिन बाद हर एक साथी को उसकी आवश्यकता के अनुसार सामान मिला करेगा।

यह समझना भूल है कि जो जितनी मेहनत करेगा उसे उसी के अनुसार सामान दे दिया जाया करेगा। जो जितना कमायेगा सब खालेगा तो वह सदा दिवालिया बना रहेगा। नये२ आविष्कारों की जरूरत होगी, नई२ मशीनों की आवश्यकता पडेगी। देश को समुन्नत बनाने के उपायों को काम में लाना, रोगी, बीमार, बच्चों, लूलों, लगड़ों, चारपाई पर पड़ी जच्चों की परवरिश करना कम्यून का धर्म होगा, इस दशा में यह कैसे हो सकता है कि सारी मेहनत का पूरा फल हर एक को चुका

दिया जायगा। निस्सन्देह कुछ बचाना होगा जिससे देश की कला कौशल, उद्योग धन्धों को समुन्नत किया जाय, नई कलें आवें और बड़े २ कारखाने खोले जाय। इसलिए कुछ अर्थ काम की उन्नति व वृद्धि के लिए रक्खा जायगा, तो भी बड़ी मैशीनों से इतना सामान निकाला जायगा कि सबकी सारी आवश्यकताएं पूरी हो सकेंगी।

कम्यूनिज्ममें वर्गभेद-ऊँच नीच, स्वामी और नौकर आदि का भेद-नहोगा, इसका यह मतलब है कि इसमें कोई राज्य भी न होगा। हमें जान लेना चाहिये कि राज्य शासक वर्ग का एक वर्गीय संगठन हुआ करता है। राज्य में हमेशा एक वर्ग दूसरे के विरुद्ध चलता है। सम्पन्नों का शासन होगा तो वह श्रमिकों (proletariat) के विरुद्ध चलेगा और श्रमिकों का होगा तो वह सम्पन्नों के विरुद्ध। कम्यूनिज्म चाहता है कि न कोई जमींदार हो, न पूंजीपति, न कोई मजदूर और मेहनती जितने हों सब समान जनपद के लोग हों, भाई भाई हों, साथी हों। न वर्ग होंगे न वर्गों के झगड़े होंगे,न वर्गों का जुदा जुदा संगठन होगा। यदि आज धर्म (religion) संसार में न होता तो धर्म्म के नाम पर लोग क्यों आपस में लड़ते। हिन्दू मुसलमान, ईसाई आपस में केवल धर्म की कल्पना ही के कारण तो लड़ते हैं। इसलिए धन व धर्मके भेद से जो वर्ग* स्थापित हुए हैं उनके हटा देने में ही मनुष्यों का कल्याण है। जहां झगड़ा नहीं

* यहां हमने class शब्द के लिए वर्ग व्यवहार किया है।

यहां शासन या राज्य की जरूरत नहीं। जो संसार से चोरी उठ जाय तो पुलिस की जरूरत आप से आप छूट जाती है, जेलखाने और हवालातें बेकार हो जाती हैं, अदालतों का अस्तित्व निरर्थक बन जाता है।

हमारे आशंकित मित्र प्रश्न करते हैं, भगवन्! यह आप का ख्याली पुलाव कैसे पकेगा? कौन पकावेगा? क्या इतना बड़ा और महत्वपूर्ण संगठन बिना राज प्रबन्ध के चल सकेगा? समाज के लिये वस्तु प्रस्तुति का भार कौन उठावेगा? श्रम शक्ति को कौन स्थानान्तर में, जगह २ बांटेगा? समाज के आय व्यय का लेखा कौन रखेगा? इन सब, प्रश्नों का उत्तर देना कम्यूनिष्ट साधारण बात समझता है, और बतलाता है :--

प्रधान सञ्चालन का भार कई मुनीमों गुमाश्तों के कदम्बों* को सौंपा जायगा। यह रोजाना पैदावार और जरूरतोंका हिसाब रखते रहेंगे। इन्हीं के जिम्मे यह तय करना भी होगा कि कहां श्रमिकों को लगाव, कहां से हटावें और कितना कौनसा काम करना बाकी है। जब बचपन से ही लोग यह समझ लेंगे कि काम करना ही जीवन का पवित्र उद्देश है, जब यह सामाजिक काम में अभ्यस्त हो जायंगे, जब इनमें समझ आ जायगी कि काम जरूरी है और जीवन तभी आराम से व्यतीत होता है जब काम एक पहले से निश्चित किये हुये ढंग पर किया जाता है। जब समाज अच्छी तरह पर ओंगी हुई गाड़ीकी भांति

---

*हमने यहां (Bureau) के अर्थ में कदम्ब (समूह) लिखा है।

सुगमता से चलने लगेगा तो सारे काम ठीक २ इन कदमों के बताये हुये मार्ग से चलते चले जायंगे। हमें आमात्यों, पुलिस, जेल, कानून कायदों, डिगरियों और फरमानों की कोई भी जरूरत बाकी न रहेगी।

निस्सन्देह यह सारी बातें दृढ़ कम्यूनिष्ट पद्धति के अनुसार तभी चल सकती है जब प्रोलीटेरियट की पूर्ण विजय हो और पार्टी पूर्ण विकाशावस्था को पहुँच जाय। प्रारम्भ में तो प्रोलीटेरियट की विजय होने पर कुछ समय तक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। श्रमिकों को अपने शत्रुओं से लोहा लेना होगा और बहुत दिन की प्रचलित अशिष्ट रूढ़ियों के साथ भी युद्ध करना अनिवार्य होगा, क्योंकि सुस्ती, ढीलापन, निकम्मापन, अहंकार और पाप परायणता जो हमारे स्वभावों में घुस चुकी हैं निकलती ही निकलेंगी, एक दिन में नहीं निकल सकतीं। अनेक पीढ़ियों का बिगड़ा हुआ शील का माठ सुधरेगा तब ही सम्पत्तों के शासन काल की दुर्गन्ध मिटेगी और कानून, दण्ड, दबाव की दलन नीति विनष्ट होगी। इस बीच में भी तो श्रमिकों को जीना ही होगा, इस लिये श्रमिक शासन में भी राज्याधिकार की छाया कुछ काल तक रहेगी फिर इसका भी अन्त हो जायगा। सब श्रेणी के लोग मिल जुल कर एक पुष्ट दल बन जायेंगे और एक सार्वभौम श्रमिक दल मुक्त हो आनन्द से काम करेंगे और सुख से रहेंगे। कुछ ही दशाब्दियों में एक दम नई दुनिया नजर आने लगेगी, सारी रीतियां

नई और सुख देने वाली; सारे लोग नये साचे में ढले और पुरुषार्थी, और निश्चिन्त व आनन्दित दीखने लगेंगे।

श्रमिकों के विजयी होने के बाद जब पिछले घाव भर जायँगे तब कम्यूनिस्टिक पद्धति के अनुसार पैदावार की शक्ति बहुत जल्द बढ़ जायगी। इस वृद्धि के कारण नीचे संक्षेप से बतलाये जाते हैं।

पहले तो लोगों की बहुत सी शक्ति जो इस समय वर्गीय झगड़े में नष्ट होती है काम करने के लिये बच रहेगी। हम देखते हैं कि कितनी शारीरिक शक्ति, मानसिक बल और श्रम राजनैतिक झगड़ों में, हड़तालों में, वैर विरोध, सरकशी और इनके दबाने में, अदालतों की तहकीकात या मुकद्मेबाजी में और पुलिस की दौड़ धूप में, विनष्ट हो जाया करते हैं। यह सब बातें जाती रहें तो कितना समय और बल बचे और दूसरे अच्छे कामों में लगे। इसी तरह जो तमाम धार्मिक झगड़े मिट जाय, बनावटी धर्म्म का ढकोसला शेष न रहे तो और भी वैर विरोध का अन्त होजाय और दूसरे कामों में तन, मन लग सकें।

दूसरे वह धन और बल जो आज कल प्रति द्वन्द्विता, होड़ाहोड़ी में खराब हो जाता है, रुपये के बाजार और माल की बिक्री की उथल पथल में और युद्धों में बरबाद होता है वह भी हमारे भोग और अच्छे कामों के लिए बच जाय। केवल समराङ्गन में ही नष्ट होने वाले धन और बल का विचार करें तो बदन के रोंगटे खड़े होते हैं। खरीदारों और बिकवालों की बनावटी और होड़ाहोड़ी कम अनर्थ नहीं करतीं।

तीसरे सार्वभोम सुख के पक्के उद्देश से जो उद्योग धन्धों का सगठन किया जायगा तो हम अनावश्यक नुकसान और खराबी से बचकर अच्छी २ कलों से बड़े २ कारखानों में किफायत के साथ बहुत ज्याद सामान निकाल कर उससे लाभ उठायेंगे और किसी को कोई नुकसान न होगा। क्योंकि किसी होड़ा होड़ी और आग जारी की दृष्टि से तो काम होगा नहीं, काम होगा अपनी जरूरत को दूर करने और काम को दृढ़ बनाने के लिए, कलों को पूरी तरह से समुन्नत करने, सुधारने और बनाने के लिए। आज कल सम्पन्न लोग तो नई कलों को तब काम में लाते हैं जब उन्हें काफी और सस्ते मजूर नहीं मिलते। नई कलों से थोड़े मजूरों के जरिये अधिक माल पैदा करके दूसरे सौदागरों के मुकाबिले में धन पैदा करना मात्र इनका अभीष्ट होता है, न कि सारी जनता का सुख साधन। यह समझना भूल है कि कम्यूनिज्म की प्रधानता में विज्ञान नष्ट हो जायगा,कारीगरी सम्बन्धिनी चतुराई जाती रहेगी, बल्कि इनकी अधिक उन्नति होगी, क्योंकि सभी को विद्या पढ़ने और बुद्धि बल को काम में लाने का पूरा २ सुयोग मिलेगा। अब तो थोड़े से धनिक ही विद्या पढ़ सकते हैं, विज्ञान और कला और कौशल की शिक्षा तो निर्धन श्रमिकों के लिए और भी दुर्लभ होती है। अधिकांश जनता रोटी की ही चिन्ता में अपना जीवन गवां बैठती है। छोटे २ बच्चे और स्त्रिया तक कारखानों में गुलामी करने चले जाते हैं फिर भी इनका पेट नहीं भरता।

कम्यूनिष्ट समाज में हरामखोरी न रहेगी, न हरामखोरों को कोई ऐसा स्थान मिलेगा जहा रहें और खायें पर कमाई न करें। जो व्यक्ति आज कल के सम्पन्न समाज में नाक तक खाने में, माल उड़ाने में, नशा पीनेमें, गुलछर्रे उड़ाने में बरबाद हो जाता है वही अधिक सामान पैदा करने के काम में आवेगा। सम्पन्नों के खुशामदी, आश्रित, पंडे, पुजारी, पुरोहित, गणिकाएं सब का अन्त हो जायगा। खाने और गुर्राने वालों के स्थान में कमाने और खाने वाले लोगों से भूमि परिपूर्ण हो जायगी।

इसके साथ जितना काम श्रमिकों को अब करना पड़ता है उतना काम भी न करना पड़ेगा। दिन में कुछ घण्टे काम करने के बाद पढ़ने लिखने खेलने कूदने, आमाद, प्रमोद आदि के लिये काफी समय मिला करेगा। लोगोंको खोजों आविष्कारों के लिये भी समय और अवसर अधिक मिलेगा। मनुष्य बुद्धि का विकाश बढ़ेगा और पिछले समय से कहीं ज्यादा बुद्धि, कारीगरी, अन्वेषण और आविष्कार की वृद्धि होगी। जहां मनुष्य के साथ मनुष्य का अन्याय उठ जायगा वहां मनुष्य के ऊपर से प्रकृति का अन्याय भी काफूर होजायगा। जो नर नारी अब पशु की तरह जीकर मर जाते हैं वे विचार शील मनुष्य का सा जीवन व्यतीत करेंगे।

कम्यूनिस्ट दल के विरोधी, शत्रुता, स्वार्थ परता और कभी कभी मूर्खता वश यह कह दिया करते हैं कि 'कम्यूनिज्म में हर कोई हर किसी की चीज ले लिया करता है, सब चीजें आपस

बराबर हिस्से कर लेता है' 'धरती, औजार, मशीन पैदावार सब का आपस में भाग कर लेते हैं'। लेकिन यह सब बेहूदा बाते हैं। इस तरह सार्व भौम वस्तुओं का विभाग होना असम्भव है। भला कलों, नावों, रेलों का बटवारा एक २ व्यक्ति कैसे कर सकता है ? यदि हो भी तो इससे सुख कैसे हो सकता है, यह तो उलटा दुख ओर अवनति का रास्ता होगा। इससे तो छोटे छोटे मालिक बहुत से हो जायगे। फिर वही छोड़ा छोडी आपा धापी फैलने लगेगी। श्रमिक समुदाय का कम्यूनिज़्म प्राचीन हिन्दू घरानों की तरह होगा। सब जो जो काम करके कमालाते हैं एक घर में एकत्र कर देते हैं, छोटे बडे उसी में से आवश्यकतानुसार रोटी खाते हैं कपड़ा पहनते हैं और प्रेम से रहते हैं। क्या कोई कभी यह कहता है कि 'य' ने ८ रोटी खाई 'य' ने एक ही खाई इत्यादि। ज्यों २ हिंदू समाज में दूसरे देश के शासकों का आदर्श बढता गया समाज की गति विगड़ती गई। कम्यूनिस्ट दल का समाज सम्मिलित और सार्वभौम होगा। कम्यून (अर्थात् कुटुम्ब, इसीसे कम्यूनिज्म बना है) अपनी जरूरत की जितनी चीजे हैं सब पैदा करेगा और एक स्थान पर सब का भाण्डार स्थापित करेगा और अपने हरेक सदस्य को उसकी जरूरत की सारी चीजें जितनी वह चाहेगा देगा। सब जब एक सा खाने पहरने को यथेष्ट ठीक समय पर पाते रहेंगे तो चोरी, डाका, स्पर्धा किसी भी बातको स्थान शेष न रहेगा।

तीसरा अध्याय.

आर्थिक पूंजी।

हम देखते हैं कि तय्यार माल के संग्रह करने वालों में लगातार खरीदारों के लिये घोर खींच तान चलती रहती है। इस खींचा तानी का अनिवार्य्य फल यह होता है कि बड़े बड़े सौदागरों की ही जीत होती है। छोटे सौदागर बरबाद हो जाते हैं। सारा धन और सारी पैदावार बड़े बड़े पूंजीपतियों के हाथ में सिमिट सिमिट कर जमा हो जाती है। इसी को पूंजी का एकत्र होना या केन्द्री भूत होना कहते हैं। १६ वीं सदी के अन्त से इस तरह से धन का थोड़े से लोगों के हाथ में जमा होना बहुत जोर पकड़ गया है। अलग अलग वैयक्तिक मालिकों या सौदागरों के स्थान में बहुत सी ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनिया, सयुक्त व्यापारी मडल और हिस्सेदारों की कम्पनियां काय हो गई हैं और होती जारही हैं। यह क्यों हुआ? क्यों य कम्पनिया बहुत बहुत से लोगों ने मिलकर सम्मिलित पू से खोलीं? ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियों का आविर्भाव क्यों हुआ इन प्रश्नों के उत्तर की ओर ध्यान देते हैं तो अनायास ही मालु हो जाता है कि आज कल हर एक काम में बहुत से धन व जरूरत होती है बिना इसके इस पूंजी-वृद्धि के युद्ध में कर

कार्य्यता नहीं होती। थोड़ी पूंजी से काम करने वाले बड़े पूंजीपतियों से होड़ा होडी में हार जाते हैं। उदाहरण के लिये दो बरफ बनाने वालों के कारखाने लीजिये, एक ५ टन(१३५मन) बरफ बनाता है, दूसरा अपने बड़े कारखाने में ५० टन बरफ बनाने लगा। यह ५० टन वाला अपनी बरफ पैसे सेर बेचने लगेगा जिससे ५ टन बनाने वालों को भी अपना माल पैसे सेर बेचना पड़ेगा और इस होड़ा होडी में पांच टन बनाने वालों का दिवाला निकल जायगा। अन्त में सब ग्राहक ५० टन वाले कारखाने के हाथ में आजायेंगे। बड़े कारखाने वाले क्यों जीतते हैं, क्यों सस्ता बेच सकते हैं ? इसका जवाब सीधा और सरल है। यह थोड़े समय में थोड़े मजदूरों से ज्यादा माल पैदा कर लेते हैं क्यों कि इनकी मैशीनें (कलें) बड़ी हैं, फिर इनके पास अधिक पूंजी है इसलिये यह कुछ दिन अपना माल दाम के दाम बेच सकते हैं, कभी कभी कुछ घाटा देकर भी बेच सकते हैं। लेकिन यह बात छोटे कारखाने वाला नहीं कर सकता इसलिये या तो तुरन्त अपना कारखाना उठा लेता है या दिवाला निकाल भागता है। यही बात और कारखानों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये।

अब हम दो एक ऐतिहासिक घटनाओं से बतलायेंगे कि किस तरह यह पूँजी थोड़े से लोगों के हाथमें घनीभूत हुई। इस्वी १७५० में 'बेरी' स्थानके 'केई' नामक महाशयने फ्लाईशटिल लूम (डोरेके इशारे से फिरने वाली नली दार कपड़ा बुनने का करघा)

तय्यार किया। इससे थोड़े समय में अधिक काम होने लगा, क्योंकि एक बार दाहिने दूसरी बार बायें हाथ से नली फेंकने में ज्याद समय लगता था, अब डोर के इशारे से खटाखट नली दोनों तरफ दौड़ने लगी। १७६० में धुनाई की पद्धति में भी उन्नति हुई। १७६७ में 'हारग्रीव्ज' नामक एक गोरेने कातने का नया चर्खा (Spinning-jenny) ईजाद किया। इस आविष्कार (ईजाद) से धीरे धीरे ८० तकुए एक साथ काम करने लगे। इससे अधिक सूत तय्यार होने लगा और ग्राम के कातने वाले बेकार हो चले। खपत से अधिक माल पैदा होगा तो सस्ता होगा और माल पैदा करने वालों को घाटा लगेगा और जो अत्यन्त ज्याद० माल बना तो पड़ा सड़ता रहेगा। इन गरीबों को जो बेकार होगये थे, क्रोध आया और उन्हों ने 'हारग्रीव्ज' के घर में घुस कर उसका चर्खा नष्ट कर डाला। परन्तु अन्त में 'आर्कराइट' ने १७६६ में और भी बड़ी और पुष्ट कातने की कल बनाकर सरकार में रजिष्ट्री कराली। धीरे धीरे इस आविष्कार ने चर्खों को उठाही दिया और सारे कताई के काम वाले पुरुष स्त्री कुली बनकर मजूरी के लिए दर बदर फिरने लगे। १७८४ में केण्ट के कार्टराइट ने भाप से चलने वाली कपड़े की मैशीन (पुतलीघर का) आविष्कार किया और फिर धीरे धीरे जुलाहों का सत्यानाश हुआ। सब कारीगर जो घर में स्वामी बने अपने स्त्री बच्चों के साथ अपने छोटे से कारखानों में सुख से काम करते और रहते थे कुली बन कर मलों में रात दिन

सहते हैं, अपमान सहते हैं फिर भी पेट भर खाने को नहीं मिलता।

दूर क्यों जाइये, भारत वर्ष में रेलों के आने के पहिले का हाल ध्यान में लाइये। कितने चौपाये, गाड़ियां, घोड़े, ऊँट हरकारे आदि काम करते थे, कितनी सरायें थीं, कितने गरीबों का पालन पोषण होता था, रेल ने सारा काम बन्द कर के सब आमदनी थोड़े से रेलवे कम्पनी के हिस्सेदारों की जेबों में भर कर लाखों को कुली बनादिया। इसी तरह सैकड़ों ही बातें हैं जिन पर विचार शील पाठक ध्यान देंगे तो मालूम हो जायगा कि संसार में भूखा और कंगालों की संख्या दिन २ बड़े ज़ोर के साथ बढ़ती जारही है और थोड़े से सम्पन्न लोग अति सम्पन्न होते हैं तो कुछ सम्पन्न भी निर्धन श्रमिकों में शामिल होते जाते हैं। संसार में जो असन्तोष फैला है उसका यही एक कारण है। इसी से अनुमान होता है कि संसार में शीघ्र ही भारी अतिक्रान्ति होने वाली है। इस अतिक्रान्ति के बाद जब शान्ति होगी तो कम्यूनिस्टिक सिद्धान्तों ही के ग्रहण करने से होगी, दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। तब तक यह अतिक्रान्ति नहीं होती जब तक पूंजी के प्रभुत्व व पाप का घड़ा, जो दो ही अंगुल खाली है, भर नहीं जाता।

अब इन छोटे और बड़े पूंजीपतियों की भी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का हाल कुछ थोड़ासा बतलादेना जरूरी है। बड़े २ सम्पन्न लोग थोड़ी पूंजी वालों के धन को इकट्ठा कर के, अपनी

मिलता रहता है परन्तु प्रबन्ध पक्ष ठोस बने हुये पूंजीपति संघ के हाथ में रहता है। सिण्डीकेट और ट्रस्ट एक देश के बाजार पर पूरा आधिपत्य करलेते हैं। इन्हें होड़ा होडी का डर नहीं रहता क्योंकि होड़ा होड़ी को यह पहले ही कुचल छोड़ते हैं। कभी २ एक ट्रस्ट सारे अपने विभाग के कामका इजारेदार बन जाता है। कई ट्रस्ट एक से अधिक विभाग के कामों को लेकर उसके मक्ता (monopoly holder) हो जाते हैं। हम देखते हैं कि सयुक्त राज्य अमरीका में रुइका काम प्रायः सोलह आने ट्रस्ट के हाथ में है। वर्जीनिया की तमाकू प्रसिद्ध है यह भी ट्रस्ट के ही अधिकार में हैं। कप का कामड़े आधे से ज्याद॰, कांच और कागज़ का काम तीन चौथाई ट्रस्टों के ही हाथ में है। स्टेण्डर्ड आयल ट्रस्ट(मिट्टी के तेल का व्यापारी संघ)जगत्प्रद्धि है।

सिण्डीकेट या ट्रस्ट केवल एक ही प्रकार क उद्यमों को ही आत्मसात् नहीं करते, धीरे २ ६ न बढ़ने पर व्यापार की दूसरी शाखाओं पर भी हाथ मारते हैं। एक प्रकार के कामसे लगाव रखने वाले अन्य अनेकों काम में पहले हाथ डालते हैं। कपड़े वाले ट्रस्ट को रुई, कपास और कोयला दरकार होता है, इस लिए वह इनपर भी अपना प्रभुत्व करलेता है। उसे मशीनों की जरूरत रहती है इस लिए वह लोहे की आकरों पर कब्जा करके अपना लोहे का कारखाना भी खोलना चाहता है। सार यह कि एकही प्रकार के नहीं अनेको प्रकार के कामों को भी ट्रस्ट हस्तगत करता चला जाता है। इस तरह यौगिक संघ

(Combined Trusts) खड़े हो जाते हैं। बीसवीं सदी के आरम्भ से ऐसे कई बड़े ट्रस्ट पैदा हो गये है या बन गये हैं जो कई प्रकार के मालों की पैदावार अपने हस्तगत करचुके हैं। अब हम दो चार शब्द बैंकों के सम्बन्ध में कहना चाहते हैं।

पूंजी का एकस्थ और केन्द्रीभूत होना बहुत ही बड़ी हद तक पहुंच जाने पर पूंजी की जरूरत और भी ज्याद बढ़ गई, क्योंकि बड़े २ उद्यमों के लिए बहुत ही बड़ी पूंजी की जरूरत होती है। इसीलिए ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनी की भी रीति निकली थी। जब इस रीति से भी यथेष्ट काम न चलता दीखा तब दूसरा मार्ग देखना पड़ा। यह मार्ग बैंकों का आश्रय है। यह कैसे? सुनो।

जो धन पूंजीपति कमाता है या यों कहें कि नफे की शकल में पाता है, वह सब का सब अपने खाने पहनने, आमोद प्रमोद आदि में खर्च नहीं कर डालता। जो उसके नित्य के खर्चों से बच रहता है उसे वह जोड़ता जाता है। सम्भव है कि उसे कभी अपने काम को बढ़ाने के लिए पुष्कल धन की आवश्यकता हो। नफे का रुपया तो थोड़ा २, धीरे २, समय २ पर ज्यों २ माल बिकता रहता है, आता है, तब एकदम काम बढ़ाने में धनिक बहुत सा धन कहां से लगा सकता है, इसलिए धन का जोड़ना बहुत जरूरी होता है। मानलें कि उसे एक भारी मेशीन मँगानी है, यह उसे जब तक काफी रुपया न इकठ्ठा हो जाय नहीं मिल सकती और

थोड़ा २ रुपया जो बचता रहता है वह घर में बेकार पड़ा रहता है, यह समस्या सभी पूँजीपतियों के सामने रहती है, एक दो के ही नहीं। साथ ही पूँजी की माग भी बराबर बनी ही रहती है। किसी को मेशीन या कच्चे माल की सख्त जरूरत पड़ी और समय पर काफी रुपया पास न हुआ तो उसे उधार लेना ही पड़ेगा, यही पूँजी की माग है। एक ओर पूँजी बेकार रहती है दूसरी ओर उसकी जोर की माग है, इन दोनों कष्टों को मिटाने के लिए बैंक होती हैं। जिनके पास फालतू रुपया है बैंक में जमा कर देते हैं ४) ६) सैकड़ा सालाना ब्याज लेते हैं, जिन्हें पूँजी की जरूरत है और मातबरी रखते हैं उन्हें बैंक ८) ६) सैकड़ा सालाना पर उधार देती हैं। ६) व ६) के बीच का नफा ३) सैकड़ा सालाना बैंक आप खाजाती है। इसमेंसे खर्च चुकाने के बाद जो बचता है वह हिस्सा रसदी अर्थात् अनुपातानुसार भागीदारों को दे दिया जाता है। क्योंकि बैंक भी प्रायः ज्वाइंट स्टाक कम्पनी ही हैं। इसके भी हिस्सेदार (शेअर होल्डर) होते हैं। बैंक केवल रुपये के लेन देन का काम करती हैं।

अब हम समझ सकते हैं कि पूँजीपति प्राधान्य-काल में कैसे बैंकों का महत्व इतना बढ़ गया है। यह चक्की किस तरह पर लगातार निर्धनों को पीसा करती है। जुआड़ियों की नाल की तरह दूसरों को चूस २ कर बैंक मोटी होती जाती हैं और इसी कारण से मोटे पूँजी पतियों को और मोटे बनाती रहती हैं। बैंक की पूँजी उद्योग धन्धों में लगती है, उद्योगों के नफे

इनमें जमा होते रहते हैं। बेंक की पूंजी और उद्योगस्थ पूँजी साथ २ बढ़ती है । इसी पूंजी का नाम आर्थिक पूंजी (Financial capital) है।

निचोड़ यह कि बेंककी पूँजी आर्थिक पूँजीहै जिसको कलम (item) औद्योगिक पूंजी में लगती रहती है। बेंकें अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए उद्योग की हर शाखा में, सामञ्जस्य बनाये रहने की कोशिश करती है, इनके ही सञ्चालक (Directors) प्राय बड़ी २ कोठियों, कारखानों, ट्रस्टों और सिण्डीकेटों और कम्पनियों में भी सञ्चालक रहते हैं। इन सब बातों से परिणाम यह निकला कि सारे देश के ट्रस्टों, सिण्डीकेटों और सम्मिलित उद्योगों का धन्धा संयुक्त होता है, यह सब बंकों से सम्मिलित रहते हैं। प्रधान शासक और सञ्चालकमण्डल एक छोटा सा दल महत्तम पूंजीपतियों का होता है। राज्यशक्ति इन्हीं के अभीष्ट की पूर्ति में लगी रहती है। इसलिए देश के प्रधान शासक और स्वामी एक मुट्ठी पूंजीपति होतेहैं,शेष जनता इनके ही लिए रात दिन कोल्हू के बैल की तरह पिसा करती है। अमरीका, ब्रितानिया, फ्रांस और जर्मनी प्रभृति सभी देश राजकीय पूंजी पतियों के ट्रस्ट मात्र हैं। ट्रस्ट मुखियाँ, सराफों (Banker) का बलशाली संगठन अपने स्वार्थ के लिये कोटि कोटि श्रमजीवियों को खसोटता है और उन पर शासन करता है। यह कम्यूनिस्टों का कथन है, पाठक सोचें कहां तक ठीक है।

हम कह चुके है कि कच्चा माल सुभीते के साथ लेने और तय्यार माल वेचने के लिये बाजारों की जरूरत होती है। जब इन बाजारों पर सुगमता से लाभ प्रद अधिकार नहीं जम सकता तो युद्ध किये जाते हैं और निर्बल राज्य को सबल जीतकर अपने राज्य में मिला लेता है। इस जबरदस्ती के लिये जो सैन्य और रण-सामग्री एकत्र करने का भाव व नीति है, उसे अंग्रेजी में मिलीटेरिज्म (militarism) कहते हैं। अब हम २ अध्यायों में 'शासन-तृष्णा' और 'असिनीति' पर कम्यूनिस्टिक दृष्टि से विचार करेंगे।



चौथा अध्याय.

शासन-तृष्णा।

Imperialism.

आज कल पूंजीपति जो माल उत्पन्न करते हैं वह खर्च या खपत का हिसाब करके नहीं करते, इस लिए माल के उत्पन्न करने में गदर मच रहा है। एक सीमातक पृथक पृथक देशों में आर्थिक पूंजी के शासन का फल है इस गदर का अन्त करना। इसी अभिप्राय से अनेक माल उत्पन्न करने वाले पूंजीपति जो आजतक एक दूसरे के साथ द्वन्द्व युद्ध करते रहे हैं, अब अपना सारा बल मिला कर राज्य भरके पूंजी पतियों का ट्रस्ट स्थापित करते हैं। लेकिन हम देखते हैं कि इस धन के प्राधान्य का नाश होना अवश्यम्भावी है क्योंकि इसमें पहिले तो संगठन की कमी होती है, दूसरे यह काम गरीबों और अमीरों के झगड़े पर आश्रित होता है। यदि इन दो में से एक बात भी गलत हो तो पूंजीपतित्व का नाश नहीं हो सकता अत हमारी कल्पना बेबुनियाद ठहरेगी।

अब हम वस्तुस्थिति को देखते हैं तो प्रकट है कि ट्रस्टों के होने पर भी माल की पैदावार का गदर और बिक्री की होड़ा होड़ी मिटती नहीं। यदि एक जगह यह गदर मिट जाता है तो दूसरी जगह और भी अधिक भयानक रूप में फूट निकलता है।

इस समय का पूंजीपतित्व संसार व्यापी पूंजीपतित्व है, एक ही देशका प्रश्न नहीं है। सब देश एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, एक देश दूसरे देश से माल खरीदता है। कोई देश ऐसा नहीं जो पूंजीपतित्व के पंजे में न दवा हो और अपनी जरूरत की सब चीजें खुद पैदा कर लेता हो। कई चीजें तो ऐसी हैं जो खास जगह ही पैदा होती हैं, जैसे जूट (पाट या पटसन जिसके बोरे बनते हैं) बंगाल में ही होता है, नारंगियां ठण्डे देशों में नहीं होतीं, लोहे, सोने, चांदी, तांबे की खाने सब देशों में नहीं पायी जातीं। रूई अमरीका, भारत, मिश्र और तुर्किस्तानमें ही होती है। कोई देश किसी किसी काम में बहुत उन्नति कर चुके हैं, दूसरे पीछे पड़े हुये हैं। जर्मनी रासायनिक सामान का बड़ा जबरदस्त बनाने और बेचने वाला है, सारी दुनियामें उसका माल जाता है। इगलैण्ड, बेलजियम लोहे के निर्यात के लिये अपना खास स्थान रखते हैं। सार यह कि कोई देश ऐसा नहीं जो दूसरे का बिल्कुल ही आश्रित न हो। जो एक चीज दूसरे देश के हाथ बेचता है वह दूसरी वस्तु दूसरे देश से खरीदता भी है।

अब सोचने से साफ मालूम होजाता है कि आर्थिक पूंजी ससार के बाजार से होड़ाहोड़ी का अन्त नहीं कर सकती। यदि किसी एक देश के सारे पूंजीपति लोग मिलजायें तो इससे सारे संसार का सगठन नहीं हो जाता। किसी एक देश के सारे पूंजीपति मिलकर उसी देश में राष्ट्र-पूंजीपति-ट्रस्ट बना सकते हैं और थोड़ा या बहुत उसी जगह की पैदावार की मजूर-

ौर व्यापार की होड़ाहोड़ी अलबत्ता मिटा सकते हैं। बात समझने की यह है कि जहां इन ट्रस्टों से एक राज्य के भीतर प्रतिद्वन्द्विता का अन्त किसी काम का हथिया कर कर सकते हैं वहां दूसरे राज्यों या देशों के साथ और भी भयानक झगड़ा खड़ा हो जाता है। क्योंकि अनाप शनाप माल पैदा करते हैं, और उस सबको बेचने के लिये बाजार जब नहीं रहता तो जो युद्ध एक देश के व्यापारियों और कोठी वालों में होता था अब देशान्तरों में होने लगता है। पूंजी के केन्द्रीभूत होने का यह वह नतीजा है जिसे कोई रोक नहीं सकता। जब देश के छोटे व्यापारी नष्ट हो लेते हैं, तो बड़े व्यापारियों में कुश्ती होती है। जब इन में से भी बहुत नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, तो थोड़े से बहुत बड़े व्यापारी मेल कर लेते हैं और अपने राज्य की प्रतिद्वन्द्विता एक बहुत बड़ी हद तक मिटा देते हैं और दूसरे राज्यों के साथ युद्ध आरम्भ हो जाता है यही समझाना हमारा अभीष्ट था।

अब इस एक राज्य के धनकुबेरों की दूसरे राज्य के धनकुबेरों के साथ की प्रचण्ड होड़ाहोड़ी राज्य को भी अपने साथ ले लेती है, क्योंकि राज्य का शासन इन धनवानों से ही बना होता है जैसा हम आगे चल कर किसी उपयुक्त स्थान में विस्तार से समझावेंगे। इस तरह की देशान्तरों की प्रतिद्वन्द्वता में एक राज्य जब यह देखता है कि हमारे यहां दूसरा राज्य अपना माल सस्ता बेचता है इस लिये हमारे देश का माल उत्पन्न करने वालों का माल नहीं बिकता या सस्ता बिकने के कारण व्यापारियों

और कोठीवालों को घाटा पड़ता है तो वह दूसरे देशके मालपर कर बैठाल देते हैं इस करका नाम होताहै 'सरक्षककर' (protective duty) इसका मतलब है अपने देशक उद्योगधन्धे को विदेश क औद्योगिक आक्रमणों से बचाना। मानलें कि अंगरेज पूंजीपति कलाकौशल की बहुत बड़ी उन्नति क कारण अपना एक माल फ्रांस में १० फ्रैंक को बेच सकता है, लेकिन वही माल फ्रांस के कोठीवाल १२ फ्रैंक से कम में नहीं दे सकते, तो फ्रैंच गवर्नमेंट बाहिरी माल पर २ फ्रैंक कर लगा कर देशके मालकी बिक्रीका मार्ग खोल देगी। इस तरह धनिक कोठीवालों के लिये गरीब खरीदारोंको ज्याद० दाम देना पड़ता है।

कभी २ दूसरे देश के माल को एक दम आने से रोक देने के लिए बहुत बडा कर लगा दिया जाता है। इससे देश का ही महँगा माल देश में बिकता है और बाहर का सस्ता माल नहीं आ सकता। इसको 'बाधक कर' Prohibitive duty कहते हैं। आज से अनुमान ११० वर्ष पहिले अंग्रेजों ने भारत से ब्रिटेन में जाने वाले कपड़े पर सौ प्रति सौ कर लगा दिया था जिससे भारत का माल ब्रिटेन में बिकना बन्द हो गया और भारत के व्यापारियों के हाथ से ब्रिटेन का बाजार जाता रहा। इसमें भी देश प्रेम के नाम पर गरीबों का ही खून हुआ करता है, धनवानों की जेबें भरती हैं।

एक तीसरा कर 'निकासकर' है (Cartel duties)। जब माल बहुत तय्यार होता है तो देश में तो पुराने महँगे दामों पर

बिकता रहता है पर विदेशों में बहुत सस्ते दामों पर बेचा जाता है। लागत के भाव पर और कभी२ घाटा खाकर एक देश अपना माल दूसरे देशमें बेचता है। जर्मनी अपना अलकोहल जर्मनी में जिन दामों बेचती है उससे ५० फी सैकड़ा कम पर दूसरे देशों के हाथ बेचती है, इसी तरह से लोहे के गर्डर ३० फी सैकडा कम दाम पर इटली को देती है। कई बार दूसरे देश के किसी उद्योग को नष्ट करने के लिए भी एक राज्य अपनी तरफ से अपने भागन्वेदों का घाटा पूरा करके उनका कोई खास माल दूसरे देश में सस्ता बिकवाता है। हिन्दुस्तान में चीनी का काम इसी तरह पर जर्मनी और आस्ट्रिया ने नष्ट किया। इस तरह पर जो रुपया राज्य अपने पूँजीपतियों को घाटा पूरा करने के लिए देता है उसे बाउण्टी (Bounty) कहते हैं। हमारे पाठकों को याद होगा कि Bounty fed चीनी हमारे देश (भारत) में बहुत काल तक आती रही है।

इन अनेक रीतियों से व्यापारिक हकूमत कायम की जाती है। लेकिन यही नहीं, कच्चे माल की प्राप्ति और अपने तय्यार माल की खपत के लिए बाजार की तलाश में भी बड़ी २ कोशिशें होती हैं और राजनैतिक समर की नौबत आ जाती है। कच्चे माल की खोज और तय्यार माल के लिए बाजार की तलाश में होड़ाहोड़ी के कारण बहुत ही बड़े परिमाण में धन व्यय हो जाता है। व्यापारिक ट्रस्टों में झगड़ा और प्रतिद्वन्द्विता चलती ही रहती है। शान्ति काल में ही इस खींच तान के कारण अस्त्र

शस्त्रों और अन्य लड़ाई के सामानों की वृद्धि भी होती रहती है, जरा सा बहाना मिलने पर भयानक संग्राम छिड़ जाता है।

गत १०-१५ वर्षों से लगातार कच्चे माल का दर चढ़ता चला जाता है, युद्ध काल में (१९१४-१९२०) बहुत ही चढ़ गया था और समुन्नत पूँजी प्रधान देशों में से हर एक कच्चा माल हस्तगत करने के लिये बेचैनी के साथ कोशिश करता था, अब भी कोशिश करता है और चाहता है कि कच्चे माल के मिलने का मूल द्वार ही हमारे हाथ आ जाय तो सब से अच्छा। कच्चा माल ज्यादा मिलता है भारत जैसे पीछे पड़े हुए रद्दी देशों में। इन्हीं देशों की ओर विदेशी लुटेरों का धावा हुआ करता है। किसीने रुई के लिए भारत और मिश्र पर दांत लगाया,तो दूसरे ने इसी अभिप्राय से तुर्किस्तानको जा दबाया। सभी चाहते हैं कि कच्चे माल के दाता देश मेरे राज्य में मिल जायँ, इसीलिये बड़े २ युद्ध होते हैं। पूंजीपति धनकुबेरों के लाभ के लिए उनकी प्रतिपालित सरकार मार-काट करती है और गरीब बेचारों को पुचकार कर देश प्रेम के नाम पर बलि चढ़ाया जाता है। यही असिनीति Imperialism का सारा दास्तान या कच्चा चिट्ठा है।

फिर भी प्रश्न हो सकता है कि यह सब कैसे होता है। व्यापारिक झगड़े कैसे बढ़ते २ दूसरे देश को अपने राज्य में मिलाने और महायुद्ध करनेकी हद तक पहुंच जाते हैं। व्यापारियों और कोठीवालों की छोटी छोटी होडों में तो झगड़े का कोई

काम न था। दो सौदागर छुरी लेकर नहीं लडा करते, वे तो चालाकी से एक दूसरे का व्यापार छीना करते है, फिर संसार में होडाहोडी का ऐसा भयानक पाशविक परिणाम कैसे हो जाता है ? हथियार उठाने की जरूरत क्यों पडती है ? यद्यपि सूत्र रूप से यह बातें बतला दी गई हैं फिर भी मैं कुछ विस्पष्ट रूप से और बतलाता हूँ ताकि हमारे साधारण पाठक भी अच्छी तरह पर समझलें कि बात क्या है।

माल तय्यार करने वाले (कारागर, मिलके मालिक इत्यादि) प्राय. कहा करते हैं कि उद्योग धन्धों के प्रोत्साहन के लिए 'टेरिफ्स' (आयात निर्यात् कर सग्रह) की बडी जरूरत है। लेकिन जब हम बातकी तह में घुसकर देखते हैं तो दूसरा ही रहस्य पाया जाता है। पिछले ३०-४० वर्ष के भीतर का इतिहास देखते हे तो जिन देशों ने सब से अधिक हल्ला गुल्ला ऊँचे २ करो (High Tariffs) के लिए मचाया हे, वेही सब से अधिक धनवान और बलिष्ट हैं। यह बात गलत है कि उन्होंने अपनी गरीबी और कमजोरी के सबब अपनी कारीगरी की रक्षाके लिए बडे बडे टेरिफ कर बँधाने को चीतकार मचाई थी। इस काम का अमरीका का सयुक्त राज्य ही पथ प्रदर्शक हुआ था। एक बार बर्मा की आयल कम्पनी (मिट्टी का तेल निकालने वाली कपनी) की रक्षा के लिए रूसी तेल पर भारतस्थ ब्रिटिश सरकारने कर लगा दिया, रूस ने भी भारत से रूस में जाने वाली चायपर कर बिठा दिया। इस तरहके दाव

घात राज्यों में चला करते है जिनसे अमीरो का काम होता है बड़े २ धन पात्र, धन कुबेर बन जाते हैं, परन्तु गरीबों का खून दोनो ओर से चूसा जाता है।

बाहर से आने वाले माल पर और देश से बाहर जाने वाले माल पर जो कर लगते हैं उनकी सूची का नाम टेरिफ है। यह शब्द प्रचलित होने के कारण हमने अपना लिया है।

आयात कर (Import duty)। देश में आने वाले मालपर कर लगाने से सिण्डीकेट के सम्पन्नों का एक पथ दो काज होता है। पहले तो विदेशियो के साथ होडाहोड़ी करने से पिण्ड छूट जाता है, न बाहर का आया हुआ तेल हमारे यहा ३) टिन बिक सकेगा न हमें अपना तेल ३) टिन बेचना पड़ेगा। दूसरी बात यह होती है कि अपने देश वासियो को मनपन्न लोग खूब उलटे छुरे से मूंड सकते हैं। एक उदाहरण से बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी। कल्पना करो कि विलायती कपड़े पर ५०) सैकड़ा कर हमने लगा दिया तो विलायत का माल भारत में अत्यन्त महँगा पडने के कारण बिकने से रह जायगा, धीरे धीरे विलायती कपड़े का आना बन्द हो जायगा। हिन्दुस्तान के मिलो को जब विलायती धोती ३) जोड़े बिकती थी, अपनी धोती भी ३) २॥) में बेचनी पड़ती थी, क्योंकि ग्राहक तो अच्छा और सस्ता माल लेता है। अब जब विलायत का माल बहुत ज्यादः कर लगाने के कारण आना बन्द होगया तो हिन्दुस्तानी मिलों को विलायती माल के मुकाबले

का डर बाकी न रह गया, इसलिए इन्होंने वही २॥।) की धोती ४) को बेचना शुरू कर दिया, देश को हारकर लेना ही पडेगा। इस लिए टेरिफ का अर्थ है गरीबों को लूट कर धनवानों का जेब भरना। भारत में स्वदेशी आन्दोलन का भी यही फल हुआ, गरीब लुट गये और बम्बई आदि स्थानों के मिल वाले धन कुबेर बन गये। जिस गरीब के मुह का टुकडा छिन गया वह तो भूखा मरा, टुकडा छीनने वाला चाहे काला कौआ हो या सफेद चील। हमारे लिए लंकाशायर का मिल मालिक वैसाही खबीस दिखलाई देता है जैसा बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, देहली, आगरा, इत्यादि स्थानों का मिल मालिक। जिस देश प्रेम के नाम पर गरीबों का बलिदान होता है उस देश प्रेम के लिए किसी भी मिल मालिकने १९०५ से आज १९२५ तक में कभी अपने नफे में एक कौडी की कमी नहीं की, अवसर पाने पर अपनी नफा चौगुनी दसगुनी जरूर की है। १९१४ से १९१८ तक का कपड़े के व्यापार का इतिहास देखो, १९०६ से १० तक के स्वदेशी आन्दोलन की कथा पढो।

अत स्पष्ट है कि हमारी टेरिफ का प्रभाव जितने भूभाग पर पडेगा उसका क्षेत्र फल कम है, तो नफा करने का भी अवसर कम ही होगा, और जो यह क्षेत्र फल विस्तृत है और खूब आबाद है तो नफा भी अनुपात के अनुसार ज्याद होना निश्चित है। जहा नफे की फालतू रकम खासी हद को पहुची कि ससार भर के बाजारो में हाथ मारने की हिम्मत बढ़ी।

appears that this compulsion is effected under power conferred on the Governor by the ordinance of 1922 which authorises the issue of orders compelling natives to work on Railway and other constructional Schemes The wages paid to the conscripted workers vary from 12 to 15 Shillings a week, and refusal to comply with an order may involve a native in imprisonment for a period of 2 months Those who are working on plantations run by Europeans, where Sisal and coffee are chiefly grown are exempt from compulsion of this sort The conscripts are those who prefer to live at home on their reservations, where they grow food for themselves, and maize and cotton for export

"उपनिवेश मंत्री मिस्टर 'एमरी' को यह बात हंकारते देख बहुत से पार्लिमेंट के सदस्य चकित रह गये कि अनुमान ४००० केनिया निवासी यूगेण्डा रेलवे में काम करने के लिये जबरदस्ती भर्ती किये गये हैं। जान पड़ता है कि यह बलात् भर्ती सन १९२२ के उस विशिष्ट अधिकार के अनुसार होती है जिससे गवर्नर रेलवे पर या दूसरे तामीर के कामों पर मजूरी करने के लिये केनिया के आदिम निवासी को पकड़ सकता है। इन बेगा

रियों को प्रति सप्ताह १२ से १५ शिलिंग तक यथा योग्य मजूरी मिलती है। यदि इनमेंसे कोई काम करने से इनकार करता है तो उसे २ महीने की कैद होती है। जो लोग केनिया के रहने वाले अंगरेजों के खेतों पर, जहा सीसल (sisal) और कहवा पैदा होता है, काम करते हैं, उनको बेगार से बरी किया गया है। इन बेगारियों में वे लोग हैं जो अपने घर पर ही रहना पसन्द करते हैं और अपने खाने का सामान आप पैदा कर लेते हैं, साथ ही मक्का और रुई बाहर भेजने के लिए भी निपजाते हैं।"

विचारशील पाठक उक्त वाक्यावलि में कई बातें विचार करने योग्य पायेंगे, यथा–

(क) जबरदस्तों का व्यवहार गरीबों और सीधे लोगों के साथ कैसा है।

(ख) राज्य किस तरह सम्पन्नों को गरीबों के खून चूसने में मदद देता है।

(ग) सम्पत्याभिमानी अंगरेजों का अन्तःकरण कैसा है। पार्लिमेंट के मेम्बर आश्चर्य्य स्तम्भित तो हो गये पर उन्होंने इस अमानुषी अत्याचार को हटाने का मत नहीं लिया। इस बातको जानकर भी अँग्रेज जाति सुख में सोती है और मज़े उड़ाती है। यदि धर्म्म सभ्यता वहीं होती तो लोग इस अत्याचारके मिटाने के लिए धरती आकाश हिला छोड़ते।

(घ) छोटे २ देशों को बड़ी २ शक्तियोंने क्यों आत्मसात् किया।

(ङ) कानून सिवा स्वार्थ पूर्ण षडन्त्र के और कोई अर्थ नहीं रखते। 'ला एण्ड आर्डर' ठगी के जाल का नाम है।

बनाने, दूसरी स्त्रियों की इज्जत को खराब करने, जुवा खेलने अन्धा धुन्ध शराब पीने आदि के लिये अवसर नहीं है। यह बातें तभी हो सकती हैं जब सोने चाँदी की बच्ची 'शासन की तृष्णा' का नाश हो, संसारमें मनुष्य-प्रेम बढ़े। देश प्रेम का झूठा भूत उतरे। सारी पृथ्वी हमारा देश है, सारे मनुष्य हमारे भाई हैं। हमारे शत्रु वही हैं जो हमारा हक छीन कर हमसे बड़े बने बैठे हैं। यदि वे खुशी से हममें आजायें तो इन्हें स्वागत है, यह हमारा माल हमें सौंपदें और हमारे साथ भाइयोंकी तरह रहें। यदि ऐसा नहीं करते तो हम मनुष्य-भक्तों को मानव जाति की रक्षा के लिये कोई न कोई तदबीर अवश्य ही सोचनी व करनी पड़ेगी। वह तजवीज कम्यूनिज्म का प्रचार है।

पांचवां अध्याय

असि-नीति (militarism.)

सैन्य, नौसैन्य, और हवाई बल की वृद्धि में जो दिन २ अभूत पूर्व खर्च की वृद्धि हो रही है, जिस तरह पर लड़ाई के सामान की योजना होती है उसी में आर्थिक पूँजी का शासन, बैंकों के धन कुबेरों का आधिपत्य और ट्रस्ट के प्रभाव शाली अधिकारियों का प्रभुत्व प्रकट होता है। प्राचीन काल में किसी भी अत्याचारी ने समस्त ससार पर हुकूमत करने का स्वप्न नहीं देखा। आज कल प्रभुत्व के प्यासों का ध्यान इस ओर बहुत बुरी तरह से लगा हुआ है। इससे पहले दीर्घकाय दृढ़ राजकीय ट्रस्टों का संघर्ष कभी नहीं देखा गया। इस नवीन परिस्थिति का ही फल है कि राज्य एड़ी से चोटी तक हथियार बन्द होते जाते हैं। किसी को भी दूसरे पर विश्वास नहीं है। एक राज्य दूसरे की ओर आख लगाये रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा पड़ोसी मुझपर अचानक आक्रमण कर बैठे। हर एक राज्य इतनी सेना हर दम तय्यार रखता है कि कोई उससे लड़ पड़े तो वह उसका सामना कर सके। आज कल सेना केवल उपनिवशों की मदद और मजदूरों के ही दबाने के लिए नहीं रहतीं, यद्यपि आत्म रक्षा की दुहाई दी जाती है। जहा किसी राज्य ने लडाइ का नया ढग निकाला, नये हथियार या जहाज वगैरह बनाये कि दूसरे राज्य चौकन्ने होकर उससे आगे बढ़

जानेकी कोशिश करने लगते हैं, इसलिए कि कहीं हम फिसड्डी न हो जाय। हथियार तय्यार करने, लड़ाई के सारे सामान प्रस्तुत करने के लिए भी बड़े २ ट्रस्ट बने हुए हैं जो सीमातीत लाभ उठा रहे हैं। यह ट्रस्ट फौज वालों से मिले रहते हैं। यह ट्रस्ट और सेना के अफसर लोग आग में घी डालते रहते हैं, चाहते हैं कि समर छिड़े तो हमारा दाव लगे। लड़ाई छिड़ने पर न केवल सैनिकों और हथियार बनाने वाले ट्रस्टों को ही फायदा होता है किन्तु जैसा टामस पेन ने 'राइट्स आव मैन' नाम की पुस्तक में लिखा है राज्यके बड़ेर आमात्यों और कर्म्मचारियोंके भी खूब पौबारह होतेहैं,क्योंकि युद्ध कालमें कोई नहीं पूछसकता कि धन कहां और किस तरह पर पानी की तरह लुट रहा है।

गत महासमर के पहले यही दृश्य सम्पन्न समाज ने दिखलाया था। राज-ट्रस्ट धरती आकाश और समुद्र पर हथियारों की चमचमाहट दिखला रहे थे। भूमण्डल-व्यापी समर की सारी तय्यारियां हो चुकी थीं। समर के खर्च के अनुमान पत्र बहुत ही लम्बे चौड़े बनाये गये थे। ग्रेटब्रिटन ने १८७५ ई० में लड़ाई का खर्च समस्त साल के सब प्रकार के खर्च का ३६ प्रति सौ रखा था अथवा एक तिहाई से कुछ ज्यादा ,परन्तु सन १९०७-८ में यह बजट ४८॥ प्रति सौ हो गया। अमरीका संयुक्त राज्यों का समर-व्यय का बजट ५७ प्रति सौ १९०८-में था। ऐसाही हाल और राज्यों का था। जर्मनी का माथा सब से ज्यादा खराब हो रहा था।

इङ्गलैंड और जर्मनी की होडा होड़ी का पता इसीसे लगता है कि १९१२ ई० में इंगलैंड ने तय किया कि जो जर्मनी दो ड्रेडनाट जहाज बनाये तो हम तीन बनाये। १९१३ में जर्मनी के बेड़े में १७ ड्रेडनाट थे और अगरेजों के बेड़े में २१ थे, १९१४ में जर्मनी के पास २६ थे और अगरेजों के पास ३९। लड़ाई का खर्च बढने का पता नीचे की तालिका से मिलेगा।

नीचे जो अङ्क दिये गये हैं वह करोड़ समझने होंगे। ३१ ५ का अर्थ होगा साढे इकतीस करोड़।

देश	सन् १८८८ में।	सन् १९०८ में।
रूस	३१ ५ करोड़	७० ५ करोड़
जर्मनी	२७ ० ,,	६७ ५ ,,
फ्रांस	४५ ० ,,	६२ २ ,,
आष्ट्रियाहंगेरी	१५ ० ,,	३० ० ,,
इटली	११ २५ ,,	१८ ० ,,
ब्रिटेन	२२ ५ ,,	४९ ० ,,
जापान	१ ० ,,	१३ ५ ,,
संयुक्त राज्य अमरीका	१५ ० ,,	३० ० ,,

२० वर्ष में इस तरह छलांग भर भर कर लड़ाई का खर्च बढ़ता रहा है। हम अपने पाठकों को अङ्कों की भर मार से तंग करना नहीं चाहते, नहीं तो उन्हें बतला देते कि प्रत्येक देश के धनिक प्रधान शासन ने दथवा कितना धन और गरीबों की

कितनी बहुमूल्य जानें स्वार्थान्ध होकर नष्ट की हैं। इन धन कुबेरों का जी सदा दूसरे देशों के लूटने खसोटने में ही लगा रहता है। इसी अभीष्ट सिद्धि के लिए नारकीय सामग्री तय्यार होती रहती हैं।

अब हम थोड़ा सा गत समर (१९१४-१८) का वर्णन करके इस अध्याय को समाप्त कर देंगे। जिन बातों का वर्णन ऊपर के अध्यायों में किया गया है उनसे स्पष्ट है कि 'शासन तृष्णा' के कारण महती शक्तियों में महासमर आगे पीछे होने वाला था ही, क्योंकि इनकी आपस में निर्दयता पूर्ण लूट मार चलती रही थी, केवल दबी हुई आग के फूट निकलने की देर थी। यह तो मूर्ख ही मान सकता है कि सर्बों (*Serbs*) ने आस्ट्रिया के राज कुमार को मार दिया इसलिए रण-चण्डी चेती अथवा जर्मनों ने बेलजियम पर आक्रमण किया, इसलिए महा समर प्रघटित हुआ। रूसने जर्मनी को, जर्मनी ने रूस को अपराधी ठहरानेके लिए सरविया का, ग्रेट ब्रिटेन ने अपना मुँह साफ रखने के लिये बेलजियम का बहाना लिया, क्योंकि बिना बहाने धर्म्मात्मा कहला कर खून करना कठिन था। फ्रांस ने भी ब्रिटानिया के धार्मिक बुर्के में छुपना उचित समझा।

बुहारिन कहता है, यह सब व्यर्थ का वितण्डा था। यह सब बातें श्रमिकों की आंखों में धूल डालने की थीं। इस तरह के बहाने न बनाये जाते तो अभिज्ञात कम्पनियों की

खातिर श्रमिक देहाती कैसे रणमें जाकर हँस हँस प्राण देते? अभि जातों ने यह चाल पहली ही बार नहीं चली। हम कह चुके हैं कि ट्रस्टों के स्तम्भ ऊँची ऊँची टेरिफ लगाकर देशियों को लूटते और विदेशी बाजारों को फतह करते रहते हैं। इस तरह यह आयात कर (तट कर अर्थात् Customs duty) एक प्रकार का आक्रमण है, लेकिन अभिजात कहेगा, नहीं जी, यह कर तो स्वदेशी उद्योग और वाणिज्य की रक्षा का साधन है। यही बात इस महासमर में भी दीखती थी। मतलब तो था संसार को अपने धनकी नाथ से नाथ कर मनमानी गत बनाना, सारी दुनिया का धन लूटकर सर्वश्रेष्ठ धनजाना, इस-लिए सब के सब अपराधी थे, पर बहाने किये गये परोपकार के, दया के और न्याय के। लेकिन ससार में बहुत दिन बात छुपती नहीं–'उघरहिं अन्त न होइ निबाहू, कालनेमि जिमि रावण राहू।'

१९१७ के नवम्बर महीने में रूस की अतिक्रान्ति revolution में आमात्यों के कागज पत्रागार खोल कर देखे गये और गुप्त सन्धियां प्रकाशित हुई तब लैकखि प्रमाण इस बात का मिला कि रूसी जार और 'करेन्सकी' ने अंग्रेजों और फरासी-सियों के साथ मिल कर लूटके लिए समर आरम्भ किया। इनका इरादा था कि कान्स्टेन्टीनोपिल छीनें, तुर्की और पर्शिया को लूटें, आष्ट्रिया से गेलीशिया खसोट लें। यह सब बातें आज ग्रीष्म के प्रचण्ड मार्तण्ड के समान प्रकाशित हो रही हैं,

इस आमदनी में से वह और ज्यादः मजूरी खरीदता है (मजूर रखता है), और अधिक औजार और कच्चा माल खरीदता है, और फिर माल तय्यार करके बेच लेता है। तय्यार माल हाथों हाथ बिकता बिकता जब खर्च करने वालेके हाथमें पहुँचता है तो वह भोग डालता है। जैसे गेहूँ बिकता २ खर्च करने वाले के पास पहुँचता है तो वह पीस कर खा लेता है। यह सब हेर फेर धन से होता रहता है।

इस लिए पूँजीपतित्व की पद्धति नियमित रहने के लिए जरूरी है कि रुपया ठीक २ और बेरोक टोक चलता रहे और मांग के मुताबिक रुपया मिलता रहे। इन्हीं दो बातों का विचार हमें पहले करना है।

यह तो प्रकट है ही कि रुपया (धन का पर्य्याय) एक प्रकार का पदार्थ का मूल्य है या पदार्थों के मूल्य का प्रतिनिधि है जिसे हम अगणित बार बचा सकते हैं और अपरमित परिमाण में एकत्र कर सकते हैं, यह सड़ता है न गलता है। हां ठीक २ होना चाहिये, रुपया खोटा न हो, न उसके लेने देने में कोई बाधा खड़ी हो। इसी प्रथा से धन के बचाने और जोड़ने की इच्छा पैदा होती है। फल यह होता है कि देश में प्रचलित धन सदा परिमाणमें उससे ज्यादः होता है जितना चलनके लिए तत्काल दरकार है। ऐसा न हो तो समय पर आये कहां से! जितना फालतू धन होता है वह जमा रहता है, चलन में नहीं रहता, लोगों के जेबों या सन्दूकों में रहता है। तभी तो मांग

आजाने पर झट से अपने स्थान पर ठीक आ बैठता है। और काम पार पड़ते रहते हैं। हेर फेर और उधार लेन देन की दशाओं के संयोग से रुपये के माग का विचार किया जाता है। इस माग का अन्दाजा एक खास वक्त में इस तरह होता है कि बाजार में बिके मालों के दाम के कुल जोड़ में उन मालों का दाम भी जोड़ देते हैं जिनका दाम हाथ की हाथ नहीं दिया गया था और अब इस खास समय में दिया गया, इस जोड़ में से उन रकमों को काट कर जिनका भुगतान एक दूसरे के साथ मुजरा हो जाता है, बाकी को रुपये के हेर फेर के मध्याश (average) से भाग दे देते हैं। इस तरह मालूम होता है कि रुपयोंकी मांग की कमी और ज्यादती या तो बाजारके मालों के दामोंऔर परिमाणों पर आश्रित होती है, अथवा उधार के परिणाम और रहस्यों पर,किम्वा रुपयो के हेर फेर की शीघ्रता पर। सम्भव है कि पाठक न समझ सके हों इसलिए एक उदाहरण देना जरूरी है।

मानलें कि एक सप्ताह में बाजार में जितना माल बिका सब का जोड़ १ लाख रुपया है, और जो दाम हाथ की हाथ नहीं दिया गया उसका जोड़ ७५०००) है इसमें से २५०००) का दाम आपस में मुजरे होगया। (हरी ने 'राम'से खांड ली, रामने हरी से कपड़ा लिया दोनें के माल के दाम का भुगतान बिना रुपया लिये दिये होगया, इसे दाम मुजरा होना कहेंगे) अब २५०००) काटकर ५००००) उधार की रकम रही और रुपयोंका

हेर फेर केवल एक बार हुआ। इस दशामें कुल (५००००) रुपयों की माग हुई। इसके बाद दूसरे सप्ताह में माल के परिमाण या दर तेज हो जाने से, कुल माल के दाम का जोड डेढ़ लाख रुपया हुआ, और परिस्थिति समान रही तो इस बार ५० हजार रुपये अधिक का माल खरीदना पड़ा तो जो रुपया जमा है उसी में से यह पचास हजार देने पड़ेंगे नहीं तो माल नहीं खरीदा जा सकता। इस तरह रुपयों की आमदनी में ५००००) की वृद्धि हुई और कोर्चे (Hoard) में इतनी ही कमी हुई। फिर मानलें कि मालों का दाम गिर गया तो रकम कम लगेगी और बचत मालिक के पास रह जायगी और कोचा बढ़जायगा।

उधार खरीदे हुए माल के दामों की भी कमी वेशी का यही फल होता है। लेकिन इस बात में, उधार लेन देन का व्यापारिक रहस्य बहुत काम करता है। बंकों और सराफे के काम की उत्पत्ति होजाने से एक नया 'चलन बाजार' पैदा हो जाता है। हर व्यापारी अपना रुपया बैंक में रखता है। बंकें इनके खजाञ्ची का काम करती हैं। मानलें कि श्याम और कृष्ण दोनों के खाते बैंक में हैं। श्यामको जब कृष्णका रुपया देनाहै वह एक चेक काट देता है, कृष्ण उसे बैंक में भेज देता है, बैंक श्याम के खाते में नाम लिख कर कृष्ण के खाते में जमा कर देता है और भुगतान होजाता है। जुदा जुदा बैंकों में खाते हों तो, बैंकों का आपस में ऐसा प्रबन्ध होता है कि दूसरे बैंकों के नाम के आये हुए अपने व्यापारी (constituent or client) के चिकों

को बैंकवार छाँट कर सब के साथ लेन देन का मिलान कर लेते हैं जिसका जो पावना निकलता है वह ले लेता है बाकी का जमा खर्च हो जाता है। इसको (clearing) परिशोध कहते हैं। हर शहर में बैंकें दिनमें एक बार या दो बार इस तरह परस्पर चिकों का हिसाब साफ किया करती हैं। मानलें कि पञ्जाब बैंक के पास बनारस के ऊपर के जो चिक आये वह सब मिल कर १००००) के हैं और बनारस बैंक में पञ्जाब बैंक के ऊपर के आये हुए चिक ११०००) के हैं तो पञ्जाब बैंक बनारस बैंक को १०००) भेज देगी और अपने अपने यहा दोनों बेकें व्यापारी के खातों में जमा खर्च कर लेंगे। यदि ऐसा नहो तो भुगतान के लिये बहुत रुपयों की जरूरत पड़े और धन इधर उधर फिरता रहे कोचें में न पड़ा रह सके।

अब हम देखें कि जो बराबर बाजार के मालों का कुल दाम १ लाख रहे, और तत्काल रोकडी दाम न देकर लिए हुए मालों का कुल दाम बराबर ५० हजार रहे और रुपयों का फेर १ बारसे बढ़कर २ हो जाय तो माल और रुपया दोनों जल्दी जल्दी प्रचलित होंगे और बाजार उसी रुपये को एक बार की जगह दो बार काम में ला सकेगा।

मानलें कि एक दूकानदार ने अभी १००) का गुड़ लिया और झट पट बेचकर फिर उसी रुपये से १००) का गुड़ खरीदा तो १००)से ही २००) का काम होजायगा। इस दशामें डेढ़ लाख

का काम ७५ हजार से निकल जायगा और ७५ हजार उसके कोषों में पड़ा ही रह जायगा।

(पिछले उदाहरण के साथ मिलान करके देखो)

जो इस रुपये रूपी माल की चाल में सुस्ती आवेगी तो फ उल्टा होगा अर्थात् कोषों से निकाल कर रुपया लगाना पड़ेग इससे सिद्ध हुआ कि बाजार क्रमबद्ध चलता रहे तो रुपयों आमदनी मांग के अनुसार होती रहती है। कोषों एक भाण्ड होता है जहां से धन जरूरत पड़ने पर जाता रहता है औ बाजार में रुपयों की अधिकता होने पर लौट कर आजाता है

पूंजीपति समाज की वृद्धि और उन्नति के साथ सा रुपयोंकी गति बड़े जोरोंके साथ बढ़ी, यहां तककि कोषोंकी संख से आगे बढ़गई, लेकिन कोषोंभी बढ़ताही गया, नहींतो काम न चलता। रुपयों की उत्पत्ति का बढ़ाना भी बहुत जरूरी गया। जहां सोने चांदी की खानें निकलीं वहां ही से दौड़ दौ कर सब देशों ने खरीदा। खास कर अमरीका से तो बहुत ज्याद० चांदी आई। इसलिये सिक्के बहुत बढ़ गये, यहां तक सोने चांदी के सिक्कों का मोल और महत्व पहले से बहुत क होगया०, इसी का नाम चीजों की तेजी है। पहले एक रुप २४ सेर गेहूँ खरीद सकता था, आज ५-६ सेर ही पाता ,अर्थात् रुपये का दाम घट गया, उसकी खरीदने की शक्ति घट गई क्योंकि सोना चांदी ज्याद आसानी से मिलने ल

समाज की शक्ति जितनी पहले लगती थी उससे इनकी प्राप्ति में कहीं कम लगने लगी।

फिर भी रुपयों की जरूरत इतनी बढ़ी कि धातु के सिक्कों के अतिरिक्त कागज के नोटों की सूझी। नोटों के प्रादुर्भाव के भी सूक्ष्म इतिहास से पाठकों का मनोरञ्जन होगा।

पहले जमाने में बहुत तरह के सिक्के चलते थे। अभी कुछ दिन पहिले रजवाड़ोंके जुदे २ सिक्के थे। हर एकके यहा अपनी अपनी टकसाल थी। जुदा २ सिक्कों का मोल तोल धातु का खरापन अलग २ होता था। इनसे बड़ी कठिनाई पड़ती थी बिना सराफों के काम नहीं चलता था। जगह जगह परखने वालों और भाज देने वालों की दुकानें होती थीं। बहुतेरे फेरी वाले भी होते थे जो यह काम करते थे। लोग सराफों के यहां, बैंकों में अपना धन जमा कर देते थे, वह सिक्का चलन बाजार के हिसाबसे जमा करके खाता खोल लेता था, उसीमें लिख कर जमा करने वाले से लेता देता रहता था, जमा करने वाले के पास एक सरखत होता जिसमें जमा की हुई ओर ली हुई रकमें यथा समय लिख दी जाया करती थीं।

कभी २ जमा करने वाला सराफ से रोकड़ी रुपया न लेकर उसके बदले में एक पुर्जा लिखा लेता यह पुर्जा सराफ की मातबरी पर, या लेन देन होने के कारण दूसरे सराफ लेकर रुपया दे देते थे और लिखने वाले सराफ के खाते में नाम लिख देते। इसीका एक रूपान्तर नोट है जो आज कल चलता है। कहते हैं

देश में धन का आत्य (superfluity or glut) हो जाता है। जो धातु के सिक्के हों तो लोग दबा कर रखलें (कोर्चा करले) और बाजार में जरूरत से ज़्याद न चल सकें। जहा धातु के सिक्के और नोट (कागजी पर्चे) दोनों चलते हैं, वहा धन को दबा कर रखने वाले तो सोना ही रखकर संतुष्ट होते हैं, इसलिये सोना लोगों के तले दबता जाता है। दूसरी ओर नोटों की अति वृद्धि का यह फल होता है कि लोग इसके बदले में सोना लेना चाहते हैं, तब नोट निकालने वाली बैंक या राज्य कठिनाई में पड़ जाता है, दीवाला निकाल बैठता है। हम १८९३ से आज तक का भारत वर्ष का करेंसी सम्बन्धी इतिहास पढ़ने से अच्छी तरह समझ सकते है कि करेंसी की चालें कैसी २ हो सकती हैं। गवनमेण्ट थोथे नोटों के लेने को बाध्य करती है और आप भी करों की उगाही में यही कागजी रुपया लेती है, क्योंकि इसके बदले में सोना खजाने से नहीं मिल सकता। यह सारी दिवालिये पनकी कार्य्यवाही पिछले महासमर के समय सभी लड़ने वाले राज्यों में देखी गयी थी। कहीं २ अब भी देखी जाती है।

सोना और नोट दोनों साथ साथ नहीं चलते। यातो सोना विदेश को माल के बदले दे दिया जाता है या दाब कर रख लिया जाता है और नोट चला करते हैं। नोटों को तो बाहर कोई पूछता ही नहीं, इसलिये यह घर में ही लट्ठ के बल चलाये जाते हैं। इन नोटों को कोई जमा करके नहीं रखना चाहता क्योंकि इनका विश्वास नहीं। यह बाहर लिये नहीं जाते, सड़ सकते हैं,

गल सकते हैं, जल सकते हैं, राज्य परिवर्तन होने या अति क्रान्ति होने के बाद रद्दी हो सकते हैं, दिवाला निकाल कर बैंकें या गवर्नमेंट इनको रद्दी बना सकती है। इसलिये इनका विश्वास कम हो जाता है, इन्हें कोई प्रेम से लेना नहीं चाहता। आजकल जरूरत से बहुत ज्यादः नोट चलन में हैं, फिर भी उतना ही काम देते हैं जितना पहिले इनसे कहीं कम नोटों से निकल जाता था। इसका सार यह है कि नोटों की बहुतायत नोटों का मोल गिरा देती है और उपभोग के पदार्थों का दाम बढ़ जाता है। अगर धातु के सिक्के भी चलते हों तो नोटों पर बट्टा लगने लगता है। यह सब बातें जगत प्रसिद्ध हैं। पूंजी-पति सरकारों की नीति बड़ी अनीति पूर्ण होती है, नोटों के छापने की हद्द होने पर भी अपने मतलब के चोर दर्वाजे कानून में रखे जाते हैं उन्हीं के जरिये अपने स्वार्थ वश खजाने की जरूरत के लिए, बाजार के चलनके अभिप्राय से नहीं, गवर्नमेंट मनमाने थोथे नोट छाप लेती हैं और उन्हीं से चीजें खरीदती है और नौकरों को वेतन देती है। कर से आया हुआ रुपया अनाप सनाप शासक समुदाय हड़प जाते हैं और घाटा दिखा कर थोथे नोट छाप छाप प्रजा को लूटते रहते हैं। लड़ाई के समय तो यह चालाकी खुलम खुला और कसरत से देखने में आती है। जर्मनी के 'मार्क्स' (सिक्का) और रूस के रूबिल, का हाल हमारे पाठकों को भूला न होगा।

मलबारी में भाषण दिया*। ब्रिटिश सत्ताधारियों का जो घृणित व्यवहार अफरीका के असली वाशिन्दों और हिन्दुस्तानियों के साथ है, जो बर्ताव ऐशिया वालों के साथ अमरीका आदि में है वह सब संसार भर जानता है। आसाम के चाय के बगीचों में और उपनिवेशों में भारतीय कुलियों की दशा कौन नहीं जानता। हम इस पुस्तक की रक्षा के लिये विशेष विस्तार में जाना नहीं चहते।

सब का सार यह है कि जब किसी राज्य में एक जाति के लोगों को सारे अधिकार होते हैं और दूसरी जाति के लोगों के अधिकार कुछ थोड़े से ही होते हैं, जब एक जाति दुर्बल और दूसरी बलवत्तम बन जाती है, जब बलवान जाति दुर्बल जाति के गले विदेशी भाषा, विदेशी रीति रवाज, चाल ढाल उसकी इच्छा के विरुद्ध बाध देती है, जब दुर्बल जाति अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन नहीं अतिवाहित करने पाती तब हम कहते हैं कि एक जाति दूसरी के साथ अत्याचार करती है। इसी का नाम गुलामी है। भारत भी आज इंगलैण्ड का गुलाम है।

सम्प्रति हमें एक बड़े महत्व के प्रश्न की मीमासा करनी चाहिये, जबतक यह सवाल हल न होगा ससार का दुख दूर नहीं हो सकता। सवाल है, क्या भारत वासियों के लिये उचित

*फ्रासिस डीक और लुई कसूथ के समय का 'हँगेरी' का इतिहास देखिये। लाइफ आव कसूथ में भी इसका जिक्र है।

होगा कि ये बिना विचारे सारे अंगरेजों, फरासीसियों, चीनियों तातारियों, तुर्कों मिसरियों इटालियनों से शत्रुता और घृणा करने लग जायें? क्या भारत के श्रमिक दल और किसान समुदाय को इस बात का नैसर्गिक अधिकार है कि दूसरे देशों के लोगों पर सन्देह करे उन्हें घृणा दृष्टि से देखे, केवल इस लिए कि वे विदेशी हैं, दूसरी भाषा बोलते हैं उनके रहन सहन चाल व्यवहार दूसरी तरह के हैं? कदापि नहीं, संसारके सभी श्रमिक, किसान, कारीगर वैसेही हैं जैसे भारत का भाषा 'भाव' आचार विचार, रीति रिवाज जुदा होतो इससे क्या। सभी हमारे भाई हैं, सभी हमारी तरह सत्ताधारियों, धनवानों, राजकर्मचारियों के अत्याचारों से पीडित मनुष्य हैं, सभी गरीबी, अत्याचार, और अन्याय का दुख हमारी तरह भोग रहे हैं।

क्या भारतवासी, भारतवासी सत्ताधारी को इस लिये प्यार करेगा कि वह उसे हिन्दुस्थानी में गाली देता है और हिन्दुस्थानी जूते से मारता है और अगरेजों से इस लिये घृणा करेगा कि वह अंगरेजी में डेम, फूल, रान आउ बिच, कहता है और डासन के बूटों की ठोकर लगाता है? यह बात सभी देश के श्रमिक दल के विचारने की है कि हमें किसी भी मनुष्य से घृणा नहीं है, हमें, घृणा है अत्याचार से, हमें घृणा है लूट खसोट और धींगा धींगी से। सम्पन्न और शासक मण्डल भी जिसदिन सीधे रास्ते पर आजायँगे हमारे प्रेम पात्र होजायँगे, हम उनका पेच छुड़ाकर उन्हें मनुष्य बनाना चाहते हैं, सताना नहीं चाहते।

इसी महत् सिद्धान्त को सामने रख कर आज से ७७ वर्ष पहले भगवान 'मार्क्स' और महात्मा 'एंजिल्स' ने अपनी घोषणा में स्पष्ट लिखा है कि 'सब देशों के श्रमिक कद्‌मों मिल कर एक हो जाओ' अर्थात् भूमण्डल के मेहनती भाइयो सब मिल कर एक कुटुम्ब बनकर प्रेमसे रहो। वसुधैव कुटुम्बकम्। यादरहे कि सारा संसार और उसका (ससार का) सारा धन ससारके श्रम जीवियों का है। बिना विचार जाति पांति, रंग रूप, चाल ढाल के संसार के मनुष्य मिल कर कमायें मिल कर खायें सुख स रहें लड़ाई झगड़े घृणा, स्पर्धा और कुटिलता छोड़दें। एकदेशको दूसरे देश के साथ विरोध करने का का कोई हक नहीं है। यह वसुन्धरा थोड़े से लोगों के भोग और सारी प्रजा के दुःख भोगने के लिये नहीं है। भूमण्डल हमारा देश है, मनुष्य हमारी जाति है, मेहनत हमारा पेशा है। न हम किसी को सतावेंगे न किसी का अत्याचार सहन करेंगे।

ससार भर के श्रमिकों को चाहिये कि मिल जायें। किसी देशका काम बिना दूसरे देश के सयोग के अच्छी तरह नहीं चल सकता। कहीं रुई होनी है, तो कहीं कोयला, एक जगह लोहा बहुत निकलता है ता दूसरी जगह अन्न खूब पैदा होता है। हमम प्रेम और मा‍इप हो तो हम सब मिल कर बड़े आनन्द से रह सकते हैं। इस तरह सारे संसार के मनुष्यों के आनन्द में जो थोड़े से स्वार्थी खलल डालते है, उन्हें जाति, देश और रग का भेद छोड़ कर श्रमिकों का काम है कि जिस तरह हो

अत्याचार करने में असमर्थ कर छोड़ें। तन मन धन से एक देश के श्रमिक व किसान दूसरे देश के श्रमिक और किसानों की मदद, उस रोटी की लड़ाई में करें जो सत्ताधारी और अधिकार प्राप्त गुरुड के साथ जारी है। जातीयता और राष्ट्रीयता का भ्रममूलक अभिमान और मूर्खता छोड़ कर सम्पन्नों के अनुचित आचरणों के साथ संसार के श्रमजीवी मिलकर झगड़े के लिए तय्यार होजायँ।

इस समय चीन पर फ्रांस, इंगलैण्ड, अमरीका और जापान मिल कर जो अत्याचार कर रहे हैं यह कहां का न्याय है? इसके पहिले इन शक्तियों के साथ जर्मनी भी शामिल थी और पाँचों ने मिल कर इसे लूटा खसोटा था। हांग, काग, शंघाई और काएटन प्रभृति सब चीन के अँग हैं, इनमें चीन के श्रमिकों और किसानों को सुख से रहने और अपना प्रबन्ध आप करने का पूरा नैसर्गिक अधिकार है। इस उचित हकको छीनने के लिये बड़े बड़े बलशाली राज्यों ने बहुत काल से ढोंग रच रक्खा है और अब अपने विचारों को कार्य्य रूप में लाना चाहते हैं। इस समय जापान, फ्रान्स, अमरीका और इंगलैण्ड के श्रमिकों, किसानों, कारीगरों का धर्म्म है कि चीनके श्रमिकों के साथ मिलकर, सम्पन्नों, सत्ताधारियों और अभिजातों के इस अत्याचार को अपने अपने देश में बलपूर्वक रोकें और चीनियों का साथ दें। जिस तरह भारत के लुट जाने से उपर्युक्त देशों के गरीबों को कोई लाभ नहीं हुआ केवल सम्पन्नों का ही जेब भरा

है, वैसे ही चीन के लुटने से भी होगा। केवल इतना कहने से कि इगलैण्ड ने आधी दुनिया जीतली इंग्लैण्ड के गरीबों का आज तक दुख दूर न हुआ। कुली मजूरों के पेटकी ज्वाला शान्त न हुई। अमीरों की गुलामी से गरीबों को छुटकारा न मिला। ईस्ट कोस्टका नक्शा न बदला। इसपर भी जो हमारे इंगलैण्डके श्रमिक भाई सावधान नहीं होते तो उनकी ही भूल है। यही बात जापान फ्रास और अमरीका के श्रम जीवियों पर भी ठीक लगती है। जो अमीरों के हाथ की कठपुतली बन कर देश भक्ति का राग गाते हैं, दो दो पैसे पर नर हत्या करने जाते हैं और मरते मारते है वे अत्यन्त हेय नीच और मनुष्यता हीन लोग हैं।

क्या हम नहीं देखते कि फ्रास इगलैण्ड को इंगलैण्ड जर्मनी को, जर्मनी फ्रासको इसी तरह एक देश दूसरेको कुचलनेके लिए सिंहनाद करता रहा है और अब भी ऐसा ही करहा है। पर हम पूछते हैं कि जर्मनी के कुचले जाने से फ्रास, इंगलैण्ड, इटली के देशों के गरीबों की क्या गरीबी मिट गयी? प्रत्यक्षमें तो यही देखा जाता है कि थोड़े से राज कर्मचारी और बड़े बड़े धन पात्र और सम्पन्न बड़े धनकुबेर बन गये, गरीबों की संख्या बढ़ी, बेकारी की वृद्धि हुई, लेकिन मरने वालों में गरीब लोग ही थे। लाखों करोड़ों की तादद में जो सिपाही दोनों पक्ष से भरती होकर गये थे, १०) १०), ५०) ७०) रुपये मासिक के श्रमिक ही तो थे। यह क्या प्रत्यक्ष हरामखोरों वाली वाणी नहीं है कि 'आ, सो दमादम, कमायें भाई धानू खायें हम'। गरीब ही मरें

गरीबही मेहनत करें और जो माल पैदा हो थोड़े से धनवान हड़प कर जाय, या राज और गिरजे के लोग निगल जायें। इस लिये इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय लड़ाइयों का शीघ्र अन्त होना चाहिये और इनका अन्त करना श्रमिकों के ही हाथ में है। किसी राष्ट्र के भाग्य का निर्णय ठीक ठीक श्रमिक ही कर सकते हैं, पर-राष्ट्र के साथ अपने राष्ट्र के सयोग के भी श्रमिक ही अधिकारी हैं।

भारत को ही लीजिये, हमारे दो चार आदमी मनमानी स्वराज्य की परिभाषा कर डालते हैं, कोई प्रजासत्ताक, कोई प्रजातन्त्र, कोई पार्लिमेंटरी, कोई औपनिवेशिक, कोई किसी तरह की सरकार भारत में स्थापित करने की चर्चा करता है। कभी एक ही आदमी 'औपनिवेशिक सरकार भारत स्वीकार करता है' कहकर सारा भारत बन बैठता है। कम्यूनिस्ट कहता है, यह सब स्वार्थी, अधिकार प्राप्त लोग हैं। इस बातका अधिकार भारत के श्रमिकों और किसानों को ही है कि वह कहें कि हम अपने देश का प्रबन्ध किस तरह का रखना चाहते हैं, हम किस देशके साथ सयोग करेंगे, किसका सम्बन्ध विच्छेद करेंगे। फिर भी हमारा किसी राष्ट्रसे द्वेष न होगा, क्योंकि मजूर और किसान जानते हैं कि भारत पर जो अत्याचार हो रहा है इसका दायित्व या जिम्मेदारी ग्रेट ब्रिटेन के मजदूरों और किसानों पर नहीं है, बल्कि वहा के थोड़े से सम्पन्न लोग अर्थात् सत्ताधारी जत्था ही इसका उत्तरदायी है।

अगर बेवेरिया में सोवियट सरकार स्थापित होती है और शेष जर्मनी में नहीं हो सकती तो जर्मनी के श्रमिकों को उचित है कि लड़कर बेवरिया को जर्मनी से पृथक रख कर जीने दें। इस सम्बन्ध विच्छेद से कोई हानि नहीं है, न बेवेरिया के श्रमिकों की शेष जर्मनी के श्रमिकों के साथ दुशमनी होती है। इसी तरह जो सारी ही जर्मनीमें सोवीयट-सरकार-स्थापना की घोषणा हो और सब मान लें लेकिन एक छोटा सा बेवेरिया का टुकड़ा सम्पन्नों का बल अधिक होने के कारण स्वीकार न कर सकें, सम्पन्न उसे अलग रखना चाहते हों और श्रमिक एक में रहना चाहते हों तो श्रमिकों का कर्तव्य होगा कि बेवेरिया के श्रमिकों का साथ देकर सोवियट सरकार की स्थापना करावें। हम फिर स्पष्ट कर देना चहते हैं कि सोविएट की स्थापना से हमारा अभिप्राय धनवानों को नष्ट करना नहीं है किन्तु उनके अत्याचारों से अपनी रक्षा अभीष्ट है, इसमें उन्हें कष्ट प्रतीत हो तो उसका श्रमिकों के पास कोई इलाज नहीं। जो हम अपनी रोटी की रक्षा करें और उससे बन्दर को चुराले जाने का मौका न मिलने के सबब तकलीफ हो तो हम लाचार हैं। हम यह नहीं चाहते कि धनिक न जीवें पर वे श्रमिक बनकर हमारे साथ भाई की तरह रहें, हमारे मुँह का टुकड़ा न छीनें, हमारे ऊपर शासन न करें, हम पर अपना रोब न जमावें। मिल कर कमाना बांट कर खाना मनुष्यों की मनुष्यता है, न कि शिकारी जानवरों की तरह आदमी का आदमी को लूट कर खाना।

हम समस्त भूमण्डल के राज्यों में से एक २ के उदाहरण लेकर देख सकते हैं कि अत्याचार की जड़ कैसे संसार में दृढ़ हुई किस तरह अभिजानता ने जन्म पाया। कैसे राजा रईस जमींदारों की उत्पत्ति हुई। इंगलैंड की फेवियन सोसाइटी के सप्तनिबन्ध पाठ से हम बहुत कुछ जान सकते हैं। भारत वासियों को मुगलों का इतिहास, वर्तमान रजवाड़ों की गति विधि और अंग्रेज सरकार का व्यवहार काफी है।

आठवां अध्याय।

सेना का निबन्ध

कम्यूनिस्ट चाहता है कि जो फौजें नौकरी देकर बराबर कायम रक्खी जाती हैं इनको हटा दिया जाय और इनकी जगह नागरिक सेना बनाई जाय। नागरिक सेना में समस्त देश वासियों को हथियार देकर सिपाही बना दिया जाय। सेना के अफसर लोग जो एक खास वर्ग में से लिए जाते हैं न लिये जाकर उसी साधारण नागरिक सेना में से चुन कर लिये जाया करें अर्थात् यह न हो कि धनवानों और बड़े आदमियों में से ही फौजी अफसर चुने जाय। इसी प्रकार स्वीटजरलेंड की प्रजातन्त्र में होता है।

लेकिन यह बात अभिजातता के पक्षपाती समाज में नहीं हो सकती विशेष कर जब कि अभिजातों और श्रमिकों में झगड़े हो रहे हों। गरीबों और अमीरों के झगड़ों के समय तो ऐसी स्थिर वेतन भोजी फौजों की बारकों के उठा देने का यही मतलब होता कि वह जगहें तोड़दी जाय जहां जहां श्रमिकों और किसानों को रखकर यह सिखाया जाता है कि अभिजातों की खातिर काम पड़ने पर तुम अपने किसान और श्रमिक भाइयों का सिर काटो, फिर भला अमीर या अभिजात लोग इस बात को कैसे पसन्द कर सकते हैं कि बारकें तोड़दी जायँ।

जब किसी दूसरे राष्ट्र के साथ झगड़ा होता है तो श्रमिकों और किसानों को ला ला कर कभी जबरदस्ती पकड़ पकड़ कर अभिजातों की सरकार इन्हीं बारकों में उन्हें सिपाही बनाती है और एक देश के गरीब दूसरे देश के श्रमिकों या गरीबों के गले काटते हैं, लाभ होता है अमीरों का क्यों कि सरकार तो उनकी है। जो अफसर रक्खे जाते हैं वह भी इन्हीं उच्च घरानों के पक्ष और परिकर के होते हैं जो लट्ठ के बल से बाकी शिस्त (decipline) कायम रखते हैं जिससे सिपाही उनकी आज्ञा का विरोध नहीं कर सकते। इसलिए नागरिक सेनायें जरूरी हैं कि अफसर भी श्रमिकों और किसानों से बनी हुई सिपाह में सेही चुने जायें लेकिन यह बात अमीर लोग मंजूर नहीं कर सकते क्योंकि उनके हित के विरुद्ध है। इसलिए यह अपने ही अफसर और भाड़े के सिपाही रखते हैं जनता मात्र के हाथ में शस्त्र देना नहीं चाहते। यह चाहते हैं कि लड़ने मारने काटने का सारा साधन इन्हीं की सफेद * गारद के हाथ में रहे। भारत को भी निश्शस्त्र करने में गवर्नमेंट की दुर्नीति ही है। जहां कहीं धनिक सरकारों ने सार्वभौम सैनिक सेना की पद्धति रखी भी है तो सब कुञ्जी अपने पास रखी है। स्थानान्तर की पद्धतियों को देखने से स्पष्ट हो जाता है। लाल सेना की पद्धति का सञ्चार

---

* सोवियट सरकार की सेना लाल गारद कहाती है और सारी अभिजात सरकारों की सेना सफेद गारद।

पहिले पहिल १८७१ में पेरिस (फ्रांस) के श्रमिकों के बनाये हुए कम्यून ने किया था।

यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि जिस जगह साम्यवाद का आधिपत्य हो वहां सारे देशके आदमियों को हथियार बाँधने से क्या लाभ ? उत्तर साफ है। मानलें कि कुछ देशों में श्रमिकों की विजय हो गई और अभिजात धनिक लोग श्रमिक बन गये तो इन देशों में परस्पर युद्ध होने की सम्भावना न रहेगी। लेकिन यह तो सम्भव नहीं कि सारे भूमण्डल के देशों में एक साथ साम्यवाद फैल जाय, कुछ स्थान इस दौड़ में पीछे रहेंगे इनके साथ श्रमिकों को लड़ने की जरूरत पड़ेगी तो एक देश के श्रमिक दूसरे देश के श्रमिकों की सहायता, बिना सेना कैसे कर सकेंगे, सुतराम् जब तक सारे ससार में साम्यवाद सुख शान्ति न स्थापित कर ले उसे सेना की जरूरत रहेगी। जो रूस में लाल सेना देहातियों श्रमिकों किसानों की न बनी होती तो साम्यवादियों की कभी भी विजय न होती, और अतिक्रांति निष्फल जाती। जिस तरह हंगेरी और बवेरिया की सोवियट सरकारों को सत्ताधारियों ने नष्ट भ्रष्ट कर डाला उससे भी हमें स्पष्ट जान पड़ता है कि प्रारम्भ में कम्यनिस्टों को भी सेना रखनी ही पड़ेगी। इसी सेना का नाम लाल सेना है। यह लाल सेना भी कभी सार्वभौम सैनिक सेवा सिद्धान्त पर नहीं स्थापित की जा सकती, क्योंकि किसी देश के श्रमिक विजय होने पर भी जल्दी से पुराने पूँजीपतियों को या मध्यश्रेणी के

लोगों को हथियार नहीं सौंप सकते। चीन और जर्मनी में आज तक एक मुखी राज सत्ता के प्रेमी मूर्खों का अभाव नहीं हुआ। लाल सेना में वही अफसर और सिपाही होंगे जो श्रमिकों, (कारीगरों, मजदूरों, किसानों) का माल मारने वाले न होंगे। इसलिए सेना की जड़ दरिद्र ग्रामीण किसानों और नगरों के उद्योग के केन्द्रों, बड़े २ कल-कारखानों में काम करने वालों को लेकर बनाई जायगी, दूसरे लोगों को प्रधान समराङ्गन से दूर रहकर सहायता करनी होगी।

जर्मनी, स्वीटजरलेंड में या जहा कहीं भी ऐसी सार्वजनिक सेना है, वहा देखने में तो सारी जनता की सेना है, पर वास्तव में वह धनिक वर्ग की सेना है। यह बात धनिक लोग छिपाते हैं और तरह तरह के ब्याज से, शब्दाडम्बर से जनता को धोका देते हैं पर श्रमिक-सरकार सब बात स्पष्ट कहती है, क्योंकि वह सब का कल्याण चाहती है। वह नहीं देख सकती कि एक भी मनुष्य भूख से मरे वस्त्र और अन्न को तरसे, घर बिना सड़कों में पड़ा ऋतु की क्रूरता सहता २ मर जाय।

श्रमिक सरकार (सोवियट सरकार) का ध्यान रहता है कि बारकों में रहने वाले सिपाहियों की तादाद न्यूनतम रहे, खेती बारी, काम काज में लगे श्रमिकों को उनके काम से न हटाया जाय, वे काम भी करते रहें और रणनीतिभी सीखा करें। इससे देशमें न माल की पैदावार कम होगी, न समय पर सिपाहियों का घाटा होगा साथ ही सेना विभाग का खर्च भी बहुत

कम हो जायगा। श्रमिक-सरकार के शासन में कोई निर्दय धनिक तो हो होंगे नहीं जो १०-१२-१४ घन्टे आदमियों से दवाकर काम लेंगे, यहां तो खुद मुख्तार मनुष्य होंगे ६-७ घण्टे काम करेंगे बाकी २-३ घण्टे मर्दाने खेल खेलेंगे, रणनीति सीखेंगे, वह भी अपने २ गावों में। इस तरह श्रमिक सरकार का एक एक नागरिक सिपाही, पण्डित और श्रमजीवी तय्यार होगा। जब कोई शत्रु चढ़ाई करेगा तो गांव से सिपाहियों का झुण्ड विना कहे आप ही आकर एकत्र हो जायगा। जिस कामके लिए बहुत धन लगाकर आज कल धनिक सरकार 'रिजर्व' सेना रखती है वह काम श्रमिक सरकार की इस रिजर्व लाल सेना से होगा जिसका ऊपर जिक्र हुआ।

यह बात रूस में अनुभव करके देखो जा चुकी है। ऐसा सुन्दर प्रवन्ध न होता तो हंगेरी की तरह लोग रूस की भी सोवियट रिपबलिक को पीसकर पी जाते।

लठ्ठ के बल जो शिस्त, हकूमत की दीवानी सरकारें रखती हैं वह दुर्बल होती है, क्योंकि उनकी सेना में अनेक प्रकार के सामाजिक तत्त्व होते हैं। बहुत बार सैनिक लड़ने से इनकार कर देते हैं, उनको गोली से मार दिया जाता है, बहुतों को लम्बी लम्बी कैदें होती हैं। गये योरोपीय महासमर में एक मुसल्मान रजिमेंट ने तुर्कों के साथ लड़ने से इनकार कर दिया था, उसके अगुआओं को प्राण दण्ड हुआ और बहुत से लोग वर्षों २ मियाद के लिए जेल में दे दिये गये। इनमें से कई मुसल्मान नागपुर

सेंट्रल जेल में थे और मुझे अनेक बार इनसे मिलने का अवसर होता था क्योंकि १९२०-२१ में मैं भी नागपुर जेल का एक असहयोगी कैदी था।

जो शिस्त श्रमिक सरकार की सेना में होती है वह हार्दिक होती है, प्रेम पर आश्रित होती है न कि भय पर। इसमें विभिन्न समाज या वर्ग का स्वार्थी तारिका धारा या वीरचिन्हाङ्कित अफसर धनवानोंके लिए शासन नहीं करता बल्कि हरेक श्रमिक अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखने के लिए लड़ता है और अपने भाई अफसर की आज्ञा को उत्साह के साथ सुनता और मानता है। यह बात भाड़े के हत्यारों में नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए हम अकालियों को ही देखल कि बिना बुलाये आपसे आप इतना कष्ट उठाने को तय्यार चले आते हैं और हँस हँसकर अपने जत्थेदारकी आज्ञा शिरोधार्य करतेहैं। क्या इनको वेतन देकर कोई बुलाये और अपने काम के लिए इन्हें भेजे तो यह इसी आनन्द और मर्दानगी के साथ आवेंगे और अपने अफसर की शिस्त मानेंगे? यह बात विचार करने की है। अपना काम अपना काम है, नौकरी के बदले किया हुआ काम दूसरे का काम है।

सार्वभौम लाल सेना की शिक्षा और दीक्षा की पद्धति से वारिकें न्यूनतम हो जायँगी और अन्त में एकदम इनका नामो निशान मिट जायगा। धीरे२ लाल सेना की बनावट पैदावार के लिए काम करने वाली टोलियों की तरह हो जायगी और सेना

संगठन का बनावटी रूप जाता रहेगा। सैनिक का काम भी और कामों की तरह स्वाभाविक काम हो जायगा। एक सैनिक विभाग को केवल लड़ने मरने केही लिए बेकार पड़ा रहने की जरूरत न होगी जैसा कि आजकल शाही फौजोंमें देखा जाता है। शाही इन्तजाम में जुदा २ वर्ग के लोग सेना भुक्त किये जाते हैं। लोगों को अपना नैसर्गिक परिकर छोड़कर सेनामें भरती होना पड़ता है। कारीगरों को कारखाने छोड़ाकर, किसानों को हल छोड़ा कर, दुकानदारों को दुकानें छोड़ाकर, गुमाश्तों को बहीखाता छोड़ाकर जबरदस्ती घसीट २ फौज में भरती किया जाता है। फिर इन्हें बारकों में रखकर जुदा २ तरह के लोगों का एक संघट्ट बना सैनिक विभागों में बाँटा जाता है। इससे यह होता है कि लाग अपने परिकर से छूट जाते हैं और अन्धे होकर श्रमिक समूहों को सताते हैं। एक प्रान्त के श्रमिक दूसरे प्रांत के श्रमिकों को अपनी गोली का लक्ष्य बनाते हैं।

लाल सेना के संगठन का तरीका इससे उलटा होता है। प्रजा विद्रोह या अति-क्रान्ति काल में चाहे शाही तरीका से ही कुछ दिन काम लियाजाय लेकिन असली गरज दूसरी ही होती है। लाल सेना सङ्गठन का उद्देश यह होता है कि कम्पनी, बटेलियन, रजिमेंट और ब्रिगेड की तय्यारी में इस बात का निश्चय हो कि सेना के उपविभागों में कारखानों, दूकानों, ग्रामों वगैरह में सामञ्जस्य हो। यों जो एकता लोगों में अपने हित के लिए थी वह बनी रहेगी। इस दशा में वह अपने लाभ के लिये

लड़ेंगे व मरेंगे, इनको बाहिरी हकूमत और शिस्त की जरुरत न होगी। दूसरे की खातिर पैसे के लिए हत्या करने का भाव ऐसी सेना में पैदा न हो सकेगा।

इस लाल सेना के अफसर या ऊर्द्धतन कर्मचारीके चुनाव के तीन तरीके होसकते हैं, (१) चाहे तो पुराने ही शाही सेना के अफसरों को लाल सेना में यथा स्थान रहने दिया जाय (२) एक दम सब अफसर श्रमिक दल में से ही चुने जायें, अथवा (३) दोनों नीतियों को मिलाकर काम किया जाय। १६१७ के नवम्बर मास में जो अतिक्रान्ति रूस में हुई, जिस में श्रमिक दल की जय और धनिक शासन का अन्त हुआ, उस से कम्यूनिस्टों को कई बातों का अनुभव होगया। उन के पास लाल अफसरों का अपना निज का दल न था और जरुरत इस बात की पड़ी कि जल्दी सेना तय्यार करके समराङ्गन में भेजी जाय, तब उन्होंने ऊपर कही हुई तीसरी नीति से काम लिया। उन्होंने लाल अफसरों की तय्यारी के लिये स्कूल खोले, लेकिन स्कूलों में जो लोग थे उन में आम तौर पर सभी नीचे दर्जे की अफसरी के ही लायक थे। इस लिये पुरानी सेना केअफसरों को बुला कर सेना की तय्यारी और सञ्चालन का भार दिया गया।

इन पुराने अफसरों से काम लेने में अनेकों कठिनाइयां और अड़चनें थीं जो अभी तक पूरी तरह से नहीं मिट सकीं। इन अफसरों के तीन समुदाय बनाये गये, दो छोटे एक बड़ा। कुछ

सगठन का बनावटी रूप जाता रहेगा। सैनिक का काम भी और कामों की तरह स्वाभाविक काम हो जायगा। एक सैनिक विभाग को केवल लड़ने मरने के ही लिए बेकार पड़ा रहने की जरूरत न होगी जैसा कि आजकल शाही फौजोंमें देखा जाता है। शाही इन्तजाम में जुदा २ वर्ग के लोग सेना भुक्त किये जाते हैं। लोगों को अपना नैसर्गिक परिकर छोड़कर सेनामें भरती होना पड़ता है। कारीगरों को कारखाने छोड़ाकर, किसानों को हल छोड़ा कर, दुकानदारों को दुकानें छोड़ाकर, गुमाश्तों को बहीखाता छोड़ाकर जबरदस्ती घसीट २ फौज में भरती किया जाता है। फिर इन्हें बारकों में रखकर जुदा २ तरह के लोगों का एक संघट्ट बना सैनिक विभागों में बाँटा जाता है। इससे यह होता है कि लोग अपने परिकर से छूट जाते हैं और अन्धे होकर श्रमिक समूहों को सताते हैं। एक प्रान्त के श्रमिक दूसरे प्रांत के श्रमिकों को अपनी गोली का लक्ष्य बनाते हैं।

लाल सेना के संगठन का तरीका इससे उलटा होता है। प्रजा विद्रोह या अति क्रान्ति काल में चाहे शाही तरीका से ही कुछ दिन काम लियाजाय लेकिन असली गरज दूसरी ही होती है। लाल सेना सङ्गठन का उद्देश यह होता है कि कम्पनी, बटेलियन, रजिमेंट और ब्रिगेड की तय्यारी में इस बात का निश्चय हो कि सेना के उपविभागों में कारखानों, दूकानों, ग्रामों वगैरह में सामञ्जस्य हो। यों जो एकता लोगों में अपने हित के लिए थी वह बनी रहेगी। इस दशा में वह अपने लाभ के लि

लड़ेंगे व मरेंगे, इनको बाहिरी हकूमत और शिरत की जरूरत न होगी। दूसरे की खातिर पैसे के लिए हत्या करने का भाव ऐसी सेना में पैदा न हो सकेगा।

इस लाल सेना के अफसर या ऊर्द्धतन कर्मचारीके चुनाव के तीन तरीके होसकते हैं, (१) चाहे तो पुराने ही शाही सेना के अफसरों को लाल सेना में यथा स्थान रहने दिया जाय (२) एक दम सब अफसर श्रमिक दल में से ही चुने जायें, अथवा (३) दोनों नीतियों को मिलाकर काम किया जाय। १९१७ के नवम्बर मास में जो अतिक्रान्ति रूस में हुई, जिस में श्रमिक दल की जय और धनिक शासन का अन्त हुआ, उस से कम्यूनिस्टों को कई बातों का अनभव होगया। उन के पास लाल अफसरों का अपना निज का दल न था और जरूरत इस बात की पड़ी कि जल्दी सेना तय्यार करके समराङ्गन में भेजी जाय, तब उन्होंने ऊपर कही हुई तीसरी नीति से काम लिया। उन्होंने लाल अफसरों की तय्यारी के लिये स्कूल खोले, लेकिन स्कूलों में जो लोग थे उन में आम तौर पर सभी नीचे दर्जे की अफसरी के ही लायक थे। इस लिये पुरानी सेना केअफसरों को बुला कर सेना की तय्यारी और सञ्चालन का भार दिया गया।

इन पुराने अफसरों से काम लेने में अनेकों कठिनाइयां और अड़चन थीं जो अभी तक पूरी तरह से नहीं मिट सकीं। इन अफसरों के तीन समुदाय बनाये गये, छोटे एक बड़ा। कुछ

लोग तो सोवियट सरकार के दृढ हितचिन्तक थे, कुछ इस के घोर विरोधी होने के कारण धनिक सरकार को, जो हार चुकी थी, सहायता देना चाहते थे और मौका लगने पर सहायता देते भी थे एक तीसरा समुदाय जो इन दोनों के योग से बना था अर्थात् जिस की जन संख्या इतनी थी कि वाकी दोनों की जन संख्या जोड़ दें तो भी बराबरी न कर सके। इस दल के अफसर विजेता पक्ष का साथ देने की ओर झुके थे और पैसे के लिये सोवियट सरकार का साथ देना चाहते थे जैसा कि भाड़े के सिपाहियों का काम होता है। मजदूर तो उसी का काम करेगा जो उसे मजदूरी दे। इस परिस्थिति में सोवियट प्रजातन्त्र के हित चिन्तक अल्प संख्यक सिपाहियों से काम लेना पड़ा दूसरों को खूब भींच कर बल हीन करने के बाद काम पर लगाया गया जो लोग भीतरी विद्रोह (civil war) में दोनों पक्षों से अलग, उदासीन रहे थे उन्हें भी श्रमिक दल ने रख लिया। जो अफसर धनिक पक्ष के पक्षपाती थे उन से भी काम तो लिया ही गया लेकिन भारी भय का सामना करना पड़ा, क्योंकि कभी कभी इन से ऐसी दगाबाजी देखने में आई जिस का विस्तार दूर तक था। कई बार इन दगाबाजों ने लाल सेना के बहुत बहुत सिपाही शत्रु के हाथ में छल से फँसा दिये। इस से श्रमिकों में से ही बड़े बड़े सैनिक तय्यार किये जाने चाहियें और इन की शिक्षा लाल-सैनिक विद्यालय में होनी चाहिए। दूसरी बात यह भी ध्यान में रखनी होगी कि कम्यूनिस्ट अफसरों और सेना के

दूसरे दल के मेम्बरों में घनिष्ट सम्बन्ध हो जिस से गैर कम्यूनिष्ट अफसरों की काफी निगरानी होती रहे।

लेकिन लाल सेना थोड़े दिनों के लिये होगी। जो लाल सेना भूमण्डल की श्वेत सेना को जीत कर सर्वत्र सोवियट सरकार का प्रचार कर देगी वही श्रमिक सरकार (वा सोवियट सरकार) की अन्तिम पलटन होगी क्योंकि तत्पश्चात् सेना की आवश्यकता ही संसार को बाकी न रहेगी।

लेकिन जबतक संसारमें कहीं भी धनिक सरकारका अस्तित्व रहेगा तब तक लाल सेना को भी रहना होगा धनिक प्रधान शासन चाहे एक मुखी राजसत्ता (Monarchy) हो चाहे, प्रजातन्त्र (Republic) हो सब में ही धनिकों का प्राधान्य होता है सभी जगह श्रमिक दल पर धनिकों के खातिर अत्याचार होता है।

नवां अध्याय ।

न्याय ।

श्रमिक समूहों को सताने धोका देने के लिये जो धनिक प्रधान समाज की अनेक संस्थाएं हैं उनमें एक न्याय विभाग भी है। यह उन कानून के अधीन वर्तता हैं जो स्वार्थपरायण वर्ग के हित की दृष्टि से बनाये जाते हैं। न्यायालयों (कोर्टों) की बनावट कैसी भी क्यों न हो, कानूनों के समूह में पूंजीपतियों का प्राधान्य, पूंजी का सम्मान और अधिकार सर्वत्र रहता है, श्रमिकों के अधिकारों की सर्वत्र अवहेला पाई जाती है। इन कोर्टों में न्यायाधीश भी सम्पन्न समाज के ही रखे या चुने जाते हैं। मजूरी में भी श्रमिक दल के लोग नहीं होते।

जब पहले २ श्रमिक शासन स्थापित हुआ तो वह भी सर्व साधारण में से न्यायाधीश चुनने में असमर्थ रहा क्योंकि इसने सम्पन्नों को मिलाकर सार्वजनीन चुनाव उचित न समझा, उसने अपने शत्रु, सम्पन्नों को अपना जज बनाने में हानि समझी। पर जब वर्गीय भेद भाव मिटकर भूल जायेंगे और सभी श्रमिक बनकर रहने में प्रसन्न रहने लगेंगे तब यह भेद भी मिट जायगा। वह दिन रूस में बहुत पास है जब वर्गों का भेद नजर न आयेगा।

सोवियट शक्ति ने न्याय कार्य की पहली मशीनरी को विनष्ट करके नये न्यायालय खोले हैं जिनमें वर्गीय पक्षपात का रग छल से नहीं छिपाया गया जैसे सम्पन्नों के अधिकार काल में होता था कि काम तो हो पूँजीपतियों के हित का और घोषणा की जाय कि सारी प्रजा के मत से यह किया गया है। पहले सम्पन्न समुदाय श्रमिकों पर अपने बहुमत से फैसला देता था, अपने स्वार्थ से प्रचालित होकर आज्ञाएं निकालता था, अब श्रमिक समुदाय अपने बहुमत से फैसला देता है अपने हितों को नजर में रखकर आज्ञाए निकालता है। फर्क इतना है कि धनिक सारी जनता की सख्या में एक अत्यन्त छोटा सा हिस्सा होता था इसलिए जो करता छल से, छिपाकर, धोका देकर करता है। श्रमिकों की सख्या बहुत बडी है यह जो करते हैं प्रकट करते हैं, जो कहते हैं विस्पष्ट कहते हैं और चाहते हैं जल्दी यह भेद भाव मिट जाय। सोवियट सरकार में जजों को श्रमिक ही चुनते हैं और श्रमिक दल में ही से चुनते हैं।

धनिक प्रधान न्यायालयों में न्याय का काम बडी पेचेदगी से होता है, पहले दर्जेवार कई नीचे के न्यायालय होते हैं, तब इनमे ऊंची कोर्टें, फिर इनके भी ऊपर अपील निगरानी सुनने वाली कोर्टें इत्यादि। इस क्रम के समर्थक कानूनज्ञ लोग अभिमान से कहते हैं कि इस तरह के प्रबन्ध से न्याय ठीक होता है, अन्याय नहीं होता जो होता भी है तो न्यूनतम। लेकिन मूर्ख भी समझ सकता है कि न्याय का यह प्रबन्ध

केवल सम्पन्नों को ही अनुकूल होता है, यही बड़े बड़े वकील वैरिस्टर लगाकर अदालत दर अदालत मुकदमें बाजी कर सकते हैं और अपने अनुकूल फैसला लेकर ही रहते हैं। गरीब के पासतो धन नहीं होता जिससे वह वकीलों वैरिस्टरों अटर्नियों की मदद ले और बहुत दिन तक खाकर मुकद्मे लड़ता रहे, कोर्ट फीस, तलबाना, नजराना काल के समान उसकी छाती पर जब बैठते नजर आते हैं तो वह न्यायालयों को हाथ जोड़कर भाग जाता है। गरीबों को न्याय कहा? किसी गरीब के ऊपर कोई अत्याचार करे तो बेचारा गरीब कम से कम बिना चार रुपयों के अपनी फर्याद ही अदालत तक नहीं पहुंचा सकता। ॥) स्टाम्प ॥) लिखाई २) वकील १) फुटकर खाने पीने और कुत्तों को टुकड़े डालने के- सब मिला कर ४) होते हैं। दर खास्त देने के बाद जितनी बार मजिस्ट्रेट से बात करने की इच्छा वादी करे उतनीही बार ४), ४) रुपया खर्च करे। जो कहीं बड़ी अदालत और हाईकोर्ट या प्रिवी कौंसल की बीमारी लग जाय तब तो खर्च का हिसाब ही जुदा है। इस लिये साफ जाहिर है कि गरीबों के लिये न्याय नहीं होता, न्याय बड़े दामों बिकता है और उसे धनवान ही खरीद सकते हैं। ऐसे न्याय रूपी प्रच्छिन्न डाकू से गरीब श्रमिकों की जान बची रहे यही गनीमत है।

श्रमिक-शासन मुकद्मा चलने से खतम होते तक में न्यून तम समय लगने देता है, खर्च एक प्रकार से होता ही नहीं।

जो थोड़ा समय और साधारण दिक्कत होती है वह इसलिये कि अभी तक नया प्रबन्ध है। प्रबन्ध पूरा और निर्दोष होने तक पहिले तो मुकदमे होते ही नहीं, जो इत्तफाक से कभी कोई हुआ तो तुरन्त पञ्च बैठ कर तय कर देंगे। न धन का काम न महीनों वर्षों अदालतों में झक मारते फिरने की जरूरत। गरीब से गरीब, अनपढ़ गंवार सीधा अदालत में जाकर अपनी शिकायत कर सकता है, न कहीं कुत्ता भूकने वाला न बिल्ली राह काटने वाली, खून का प्यासा सिपाही कहीं खोजने से भी नहीं मिलेगा।

रोमियों की बाबत सुनते हैं कि वे युद्ध काल में अदालतें बन्द कर देते थे (Inter armh leges silent) इसका अनुकरण बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा सभी राष्ट्रों में होता है, पर सोवियट सरकार में ऐसा नहीं होता। आन्तरिक युद्ध काल में (during Civil War) जब कि प्रजा, शासन पद्धति बदलने के लिए अधिकार आत्मसात् किये हुये लोगों से, लड़ रही थी, देश की परिस्थिति भयानक थी तब भी न्यायालय का काम स्थगित नहीं किया गया था। श्रमिकों के लिये न्यायालय का द्वार सदा खुला रहता था। जिस का जब जी चाहे बिना दमड़ी खर्च किये क्षण भर में अदालत के सामने अपना अभियोग रख सकता था।

नये प्रबन्ध में जल्दी जल्दी इतने अगणित हेर फेर सोवियट सरकार को करने पड़े हैं कि श्रमिक व्यवस्थापक सभा उन के (फेरफारों के) अनुसार सारे कानून भी नहीं बना सकी है।

पुराने धींगा धींगी के कानूनों को एक दम रद्दी कर दिया गया है। सोवियट के सारे कानून लिखे भी नहीं गये, न कभी सब के सब लिखे ही जायँगे, कुछ का खाका मात्र लिपिबद्ध हुआ है। इस का कारण यह है कि श्रमिक समुदाय अपना राज्य सदा के लिये स्थापित नहीं करना चाहता, इसलिये उन्हें न्यायधाराओं की अगणित पुस्तकों की भी ज़रूरत नहीं है। अन्त में सारा काम सारे देश के अर्थात् श्रमिकों के हाथ में होगा। जो व्यवस्था श्रमिक लोग बहुत आवश्यक समझ कर बुनियादी पत्थर की तरह बनावेंगे उसके अनुसार जनता के न्यायालयों में श्रमिकों के चुने जजों द्वारा सारे व्यवहारिक काम होंगे। व्यवस्था का भावार्थ निश्चय करना उनको उपस्थित मामले में लगाना श्रमिक जजों का काम होगा।

यह बुनियादी व्यवस्था कम्यूनिष्ट सिद्धान्त की होगी, जो धनिक-प्रधान कालकी सारी अवस्थाओं व्यवस्थाओं के विरुद्ध पड़ेगी और श्रमिक समुदाय के आदर्श के अनुसार काम करेगी। दण्ड संग्रह का रूप बदल जायगा, साम्पत्तिक विवादों का आधार ही बाकी न रहेगा। धरा धाम धन के झगड़ों की जड़ही कट जायगी। मनुष्य की मानसिक विचित्रता और स्त्री प्रेम सम्बन्धी कोई झगड़ा यदा कदा होना सम्भव है, उसी के लिए साधारण सा दण्ड संग्रह श्रमिक न्यायालय के लिए काफी होगा।

आजकल के जनराष्ट्रीय Popular न्यायालय, जिनमें जज चुनकर भेजे जाते हैं। इनमें से पहले जजों को वापस बुलाया जाता है और बारी बारी से हरेक श्रमिक को जाकर न्यायाधीश का काम करना पड़ता है, श्रमिक सरकार के मामूली न्यायालय हैं। अतिक्रान्ति कालके के लिए क्रान्ति न्यायालय जुदा स्थापित हुए थें। इनका काम था श्रमिक समुदाय के विरोधियों का तत्काल कठोर दण्ड देकर मुकदमे को समाप्त करदेना। यह कोर्ट अत्याचारियों, श्रमिकों के लूटने वालों को डराने के लिए वैसाही काम करती थीं जैसा कि लाड गार्द, मार्शल ला और असाधारण अतिरिक्त कमीशन इन अदालतों को सोवियटो ने नियत किया था श्रमिकों ने नहीं* । एक मनाही समर में श्रमिक समुदाय अर्थात् मेहनती वर्ग भी अपने शत्रुओं को प्राण दण्ड देनेमें चूक नहीं कर सकता था। भीतरी युद्धमें In the civil war मृत्यु दण्ड न देना असम्भवही जाता है। फिर भी जब धनिकों की कोर्टों के साथ श्रमिकों की कोर्टों की तुलना की जाय तो विचार शीलों को मानना पड़ेगा कि श्रमिक अदालतें धनिक अदालतों से कहीं दयालु, सरल और दण्ड देने में कम कठोर थीं। श्रमिक प्राण दण्ड केवल

---

*श्रमिकों के प्रतिनिधियों की कार्य्यकारिणी सोवियट है और श्रमिकों की साधारण सभा श्रमिक सभा कहाती है। ऊपर भी इनका जिक्र आ चुका है।

अन्तिम दशाओं में देते थे। इसके अनेक जीवित उदाहरण रूसकी अतिक्रान्ति के विस्तृत इतिहास में पाये जाते हैं। ऐसे साधारण मुकदमों में जिनका लगाव अतिक्रान्ति से नहीं था जो सजाएं श्रमिक कोर्टों ने दी हैं वह उन सजाओं से कहीं हल्की थीं जो धनिक कोर्टों ने उन्हीं अपराधों के लिए दी थीं। इसका कारण यही है कि सम्पन्न लोगों में सम्पत्ति प्रधान है, इसलिए सम्पन्नों और उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिए सार्वजनिक अपराधों में क्रोध के साथ बदला लेने का दुर्विचार उनके प्रतिनिधि जजों में अधिक होता है, यह बात सम्पत्ति प्रथाहीन श्रमिकों में नहीं हो सकती। पुराने धनिक शासन काल के ही शिक्षित कुछ दुष्ट अब तक रूस में मौजूद हैं जो श्रमिक सरकार के अदालतों के लिए झगड़े तय्यार किया करते हैं फिर भी उनसे श्रमिक दल या श्रमिक कोर्ट जलकर बदला नहीं लेना चाहती, वह इन्हें सुधार कर श्रमिक बनाना चाहती है। बहुधा अपराधियों को दण्ड प्रतिबन्ध के साथ दिया जाता है जो कि वास्तव में कोई दण्ड ही नहीं है। यदि दूसरी बार अपराधी फिर अपराध न करे तो उसे दण्ड न भोगना पड़ेगा। इसका अभिप्राय यही है कि दुर्वृत्तों का सुधार हो। बहुतों को सामाजिक लानत मलामत करके छोड़ दिया जाता है या सामाजिक दण्ड दिया जाताहै पर इसका अच्छा असर तभी होताहै जबकि समाज वर्गोंमें विभक्त नहो। जिन्हें कम्यूनिष्ट जेलमें रखता है उन्हें हराम खोर नहीं बनने देता, उनसे इतना काम लेता है कि उस

रोज के खर्च से इतना बचता रहे जिससे मीआद के भीतर उस क्षति की पूर्ती हो जाय जो उसने समाज की की है। जिन अपराधियों को समाज के लिए भयानक समझा जाता है उनको अलग भी रक्खा जाता है परन्तु वे अपने नैतिक सुधार और उद्धार का पूरा अवसर पाते हैं।



दसवां अध्याय

शिक्षा

आजकल धनिक-प्रधान कालमें हम देखते हैं कि पाठशालाओं के तीन प्रधान लक्ष्य हैं। पहिले तो श्रमिक समुदाय की आगे आने वाली सन्तान को धनिक शासनके प्रति श्रद्धा और भक्तिसे भरदेना। दूसरे सम्पन्न समाज के नवजवानों को श्रमिक जनता पर हुकूमत करने के लिये निपुण कर देना। तीसरे विज्ञान को खास खास कारीगरियों में इस तरह पर लगाना कि जिससे पूंजीपतियों को माल की पैदावार में सहायता मिले और उन्हें अधिक २ लाभ हो। कम्यूनिस्ट का सिद्धान्त है इन तीनों बातोंका प्रतिकार करना और मनुष्य मात्र तक शिक्षाके असली लाभोंको पहुँचाना। इसके लिये जैसे सेनामें अफसरोंका चुनाव और प्रबंध बदलना पड़ता है वैसे ही स्कूलों में शिक्षकों का चुनाव दूसरी तरह से करना होगा। धनिक प्रधान स्कूलों में शिक्षक लोग जंगली पशुओंको हिलाने का ही काम करते हैं, और जो आदमी यह हुनर रखता है उसी को शिक्षक बनाया जाता है। राज्य की ओर से जो शिक्षा मन्त्री होते हैं वे सावधानी रखते हैं कि कहीं जनता के बालक कोई भयानक बात न सीखलें। इनकी दृष्टि में भयानक बातें वही होती हैं जिनसे प्रजाको अपने रूप व परिस्थिति का ज्ञान होजाता हो। साम्यवाद, अराजकतावाद, नास्तिकवाद, और

अनेक इतिहास धनिकशासन के प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह के समर्थकों के लिये बड़े भयानक विषय हैं। वर्तमान भारत में इंगलैण्ड, फ्रान्स, अमरीका के इतिहास कुछ कम भयानक नहीं माने जाते। रूसकी अभिनव क्रांति के सम्बन्ध में अनेकों पुस्तक तो भारत में आही नहीं सकतीं।

जितनी पाठ्य पुस्तकें शिक्षा विभाग से छपाई या नियत की जाती हैं उन सब का आन्तरिक अभिप्राय साधारण प्रजा को सदा के लिये गुलाम बनाये रखने का ही होता है। लेखक भी का बंधी, खुशामदी, साचे के ढले गुलाम, स्वार्थान्ध, हृदयहीन और अभद्र चित्त होतेहैं। यह समझते हैं, धनिकोंका दौर दौरा अभेद्य और अमिट है, सदा ही बना रहेगा। इनके हृदयों में धन की प्रतिष्ठा, नामवरी का मान, थोथी उपाधियों की अर्चना और अभ्यर्थना की इच्छा भरी पड़ी रहती है। संसार मर जाय पर-वाह नहीं इनको धनिकों के साथ मिलने से आराम मिलना चाहिये। जिस तरह धर्मयाजक धनके हाथ बिके गुलाम होते हैं वैसे ही यह बेचारे शिक्षा विभाग के महन्त भी होते हैं। इस प्रकार का शिक्षा और धर्म श्रमिकों को लूटने के लिये धनिक साम्राज्य के दो बलिष्ट हाथ हैं। धर्म, श्रमिक समाज को सुला देता है, शिक्षा या पाँडित्य उनका धन लूट कर धनवानों के घर भर देता है। मध्य श्रेणी की (Secondary) और उच्चतर कालेज की शिक्षा (Higher Education) का द्वार श्रमिकों के लिए सर्वथा बंद मिलता है। मिडिल और हाई स्कूलों की दो

शिक्षा इतनी महँगी है कि श्रमिक इसे नहीं खरीद सकते। न्याय की भांति शिक्षा के बाजार का भी आधिपत्य सम्पन्नों केही हाथ में है। वे ही पैसा खर्च करके जितनी मानसिक उन्नति चाहें कर सकते हैं, बेचारे गरीब श्रमिक की पहुँच कहां। हाई स्कूल की ही शिक्षा समाप्त करने में पुष्कल धन के अतिरिक्त ८-१० वर्ष का समय लग जाता है। किसान मजूर कारीगर बेचारे अपने कुनबे का पेट पालने के लिये अपने बच्चों को खेत, कारखानों या और कामों पर भेज देते हैं। न इनके पास समय न धन। इसलिये शिक्षा विभाग केवल श्रमिकों को लूटने खसोटने वालों का ही सहायक होता है। यह विभाग न्यायालय से कम बुरा और पेचीद. नहीं है। कितने दुष्टों ने तो स्वार्थ के वशवर्ती होकर शूद्रों (गरीबों) और नारियों को पढ़ाना पाप बतलाया है, 'स्त्री शूद्रोना धर्मताम्'। एक कानून ने भारत में १६ वर्ष की उम्र के पहले मेट्रिक पास करने को जाना बन्द कर दिया। जो मूर्ख १६ वर्षके पहिले मनुष्यका पण्डित होना पाप समझताहो, उससे मानव जाति का कल्याण कैसे हो सकताहै। कानूनके गड्ड मड्ड पड़े हुए ऊँचे ढेर में न जाने कितनी खुराफातें भरी पड़ी हैं जब जिस बात की जरूरत धनिक समुदाय देखता है अपने बड़ी बड़ी तनख्वाह के गुलामों से गढ़वा लेता है, या गढ़ कर तय्यार करा लेता है। बिना कानून तय्यार किए भी धनिक शासन साधारण जनपद को अपने टुकड़ों से पले नादान कुत्तों के जरिये जितना चाहे जब चाहे सता सकता है। शिक्षा विभाग में भी अन्य

विभागों की सारी पोलें मोजूद रहती हैं। क्योंकि विभाग चाहे जितने हों पर उद्देश सबका एक है, वह यह कि थोड़े से अधिकारी, धनवान मजे उड़ायें और श्रमिक उन्हें कमा कमाकर लगातार देते रहें।

पुनश्च, इन स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है उसमें भी बड़ा अन्तर रहता है। इनके सम्पत्ति शास्त्र का बाबाआदम ही निराला है। गत महासमरके कारण सब श्रमिक किसान कारीगर भूक मरने लगेथे फिरभी धनिकोंके बेहद सम्पत्ति शास्त्रके अनुसार अनेक देशों की राष्ट्रीय दौलत (national wealth) बढ़ गई थी सिर्फ इसलिये कि थोड़े से इने गिने आदमी कोट्याधीश होगये। सम्पत्ति शास्त्र जो धनिक-राज्य के शिक्षा विभाग में पढ़ाया जाता है वह महात्मा मार्क्स के पवित्र सीधे और सच्चे सिद्धान्तों को मिटाने की ही नियत से पढ़ाया जाता है। इतिहास, समाज शास्त्र, राजनीति सभी शिक्षाओंमें अवगुण भरे पड़े हैं जिनसे श्रमिकों को बचाना बहुत जरूरी है। यदि कोई श्रमिक दल का बालक भूल भटक से उच्च शिक्षा पाकर तय्यार भी हुआ जैसा कभी हजारों में एक होता है, तो सम्पन्न लोग उसपर अपना रङ्ग चढ़ाकर उसे भी अपना सा बना लेते हैं यह दूसरी परिस्थिति का दिग्दर्शन है।

धनिक-प्रधान राज्य में श्रमिकों को वैज्ञानिक शिक्षा से सदा बहुत दूर रखा जाता है। धनवान लोग ही विज्ञान के अधिकारी और स्वामी होते हैं। विज्ञान बहुत थोड़े से लोगों

के एक छोटे से परिकर (गिरोह) का रोजगार होता है। वैज्ञानिक शिक्षा और वैज्ञानिक खोज का श्रमिक वर्ग से कोई सरोकार नहीं रखा जाता। वैज्ञानिक सचाइयों को जान कर उन्हें माल की पैदावार के लिये काम में लाने की गरज से सम्पन्न समाज को अनेक संस्थायें खोलनी पड़ती हैं। बहुत से कला भवन यह लोग इसी अभिप्राय से बनाते हैं कि विशुद्ध विज्ञान ने जितना काम करना सम्भव कर दिया है वह इन के द्वारा कार्य में परिणत हो जाय। इसका अर्थ यही होता है कि विज्ञान श्रम से सदा के लिए नाता तोड़ता है यों पूंजीपति अनेक कलाओं के स्कूल खोलते हैं, इन से सम्पन्न समाज को न केवल खास खास कारीगरी या कला के पक्के जानकार ही मिलते हैं प्रत्युत इन के द्वारा बड़े बड़े प्रबन्ध कर्ता और औद्योगिक गण पति भी तय्यार होकर निकलते हैं। इसी तरह अनेक सौदागरी के स्कूल खोलते हैं जिन से ऐसे लोग निकलें जो तय्यार माल की बिक्री स्थानान्तर में खूब बढ़ावें।

इन स्कूलों, कोलेजों, कला भवनों आदि में इतनी बड़ी फीसें रखी जाती हैं, इतनी बहुमूल्य पुस्तकें होती हैं कि श्रमिक तो इन में पहुँच ही नहीं सकता। इस का मतलब यही है कि सब उच्च कोटि का लाभ दायक काम सम्पन्न लोगों के हाथ में रहे। इस लिए कम्यूनिष्ट कहता है कि इन संगठनों में जिन बातों का सम्बन्ध पैदावार के हाथ है वे तो कायम रह सकेगा लेकिन जो बातें केवल पूंजी पतियों के पैदावार की है नष्ट होजायंगी।

विज्ञान वृद्धि के प्रत्येक साधन को अध्यवसाय के साथ उन्नति किया जायगा लेकिन जो कारण विज्ञान को श्रमिक समाज से तिरस्कृत किये हुये हैं उन्हें जड़ से मिटाया जायगा। कुल शिक्षण की पद्धति सुरक्षित रहेंगी, लेकिन हाथ पैर की मेहनत को विदा कर के कला-शिक्षा देने की पद्धति को अर्द्धचन्द्र दिया जायगा। विज्ञान बल के प्रयोग की रक्षा और वृद्धि अवश्य होगी इन के साथ साथ विज्ञान द्वारा पैदावार भी बढ़ाई जायगी, लेकिन ऐसा न होने पावेगा कि धनिक समाज जब चाहे इस के द्वारा अपना उल्लू सिद्ध करें। विज्ञान का लाभ मनुष्य मात्र उठायेगा न कि थोड़े से धनवान ही।

कम्यूनिष्ट पार्टी को शिक्षा के मैदान में भी जहां अनेक काम बनाने के करने हैं वहां कुछ काम पहले पहल बिगाड़ने भी जरूरी हैं। शिक्षा विभाग में भी जिन पद्धतियों ने शिक्षा को पूंजी पतियों के स्वार्थ का साधन और सम्पन्न वर्ग के निश्चिन्त शासन का हथियार बना रखा है उन पद्धतियों का नष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसे स्कूल, विद्यालय जिन के द्वारा अच्छी शिक्षा सम्पन्नों के बाप दादों की जागीर बन रही हो उन्हें तोड़ना पड़ता है, चाहे वह उच्च शिक्षा के 'क्लासिकल स्कूल' हों चाहे नवीन उच्च शिक्षा सम्बन्धी स्कूल या संस्था हों, चाहे सैनिक शिक्षा के भवन हों। हम पुराने शिक्षकों को निकाल कर ऐसे नये शिक्षक रखेंगे जो कम्यूनिज्म की शुभ ज्योति से संसार को

आलोकित करने का बीड़ा उठायेंगे। हमारी शिक्षा पद्धति में पुरानी पद्धति की तरह वर्ग विशेष के लाभ पर ध्यान न दिया जायगा, पवित्र शिक्षा का खुला प्रचार होगा।

रूसके पुराने स्कूलोंमें धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी, जबरदस्ती निमाज पढ़ाई जाती थी, गिरजे में जाने को विवश किया जाता था, लेकिन नये कम्यूनिष्ट स्कूलों में धर्म को स्कूलों से निकाल कर बाहर किया जायगा। किसी रंग रूप में छद्मवेश में धर्म स्कूलों में न रहने पायेगा।

शिक्षकों, अध्यापकों ओर आचार्यों की संगठित सभायें जो विश्व विद्यालयों पर आधिपत्य रखती थीं तोड़दी जा यगी। यह बाहरी शिक्षा के और विद्वानों के शिक्षा विभाग में आने में बाधक होती थीं। अब तो जो शिक्षा देने में योग्य होगा शिक्षक बनेगा। हर एक प्रान्त और, देश का वासी अपनी मातृ भाषा में शिक्षा पाने का अधिकारी होगा किसीके गले जबरदस्ती कोई भाषा न बांधी जायगी, जैसा कि अत्याचार परायण शासनों में देखा जाता है।

जनता में बहुत ही थोड़ा सा हिस्सा सम्पन्न लोगों का होता है, फिर भी इन्हीं के भावों को भरकर स्कूलों में श्रमिकों को इस लिए तय्यार किया जाता है कि यह उन के दास बने रहें, सम्पन्नों ही के विचारों और नीतियों की पैरवी करें और कोई रोक न पड़ने पावे। रूस में नगरों में रहने वाले श्रमिक यद्यपि कम संख्यामें हैं, तोभी श्रमिकों का पक्ष समर्थन करनेवाले उनके

नेता और संठन कर्ता यही लोगहैं। इसलिए नगरों के श्रमिकों के लिए यह कुदरती बात है कि वह जब अधिकार छीन कर अपने हाथ में लें तो सब से पहले कम समझ ग्रामीण श्रमिक जनता को जो बहुत पीछे पड़ी हुई है जगावें और सुधारें फिर उनमें कम्यूनेजम के भाव भरें। जो धनिकों ने स्कूलों को मजूरों को गुलाम बनाने का कारखाना बनाया तो अब श्रमिक लोग स्कूलों को अपनी स्वतन्त्रता का साधन बनायें और अपने बच्चों के मनों में गुलामी के भावों का नामोनिशान बाकी न रहने दें। जहा सम्पन्नों ने श्रमिकों के बच्चों में अपने भाव भरे थे वहा अब श्रमिक लोग सम्पन्नों में मेहनत करके खाने के पवित्र भाव भरदें। जनता के दिलों को नये सामाजिक सम्बन्धों के लिए पुष्ट और नीरोग बनाकर तय्यार करें। शुरू में गरीब लोगों को जो कठिनाई कम्यूनिस्ट समाज के तय्यार करने में पड़ेगी वह इसीलिये कि उनके दिल पर पुराने संस्कार घर कर गये हैं अभी तक वे दूषित सस्कार बिल्कुल नहीं धुले। जवानों के मनों को बदलना और बच्चों को अपने सिद्धातों के अनुकूल बनाकर तय्यार करना श्रमिक स्कूलों का काम है। इस काम की सिद्धि के लिए शिक्षा पद्धति को बदलना ही पड़ेगा।

वर्तमान धनिक शासन में बच्चे मा बाप की सम्पत्ति समझे जाते हैं। जब माता पिता 'मेरा पुत्र, मेरा पुत्री' कहते हैं तो उसका इतना ही अर्थ नहीं होता कि उनमें और बच्चों में केवल जन्मदाता और सन्तति का ही सम्बन्ध है, वे यह भी समझते हैं

कायम किये गये हैं जिनमें या तो बच्चे स्थायी रूप से रहते हैं या बहुत काल तक माता पिता से अलग रह कर विद्याध्ययन करते हैं। * इन शालाओं के अतिरिक्त 'क्रेशेज' अर्थात् लालन शालाएं हैं जहां चार, साढ़े तीन बरस तक के बच्चे लिए जाते हैं। जब माताएं काम पर जाती हैं बच्चों को इन में सौंप जाती हैं, लौट कर ले लेती हैं। इन शालाओं में बच्चों के खिलाने पिलाने सुलाने खेलाने हंसाने आदि का सब सामान व प्रबन्ध होता है। इसलिए श्रमिकों के अधिकार पा जाने पर या इससे पहले भी जो होसके-बच्चों की शिक्षा की पद्धति ठीक रूस की सोवियट सरकार के अनुसार होनी चाहिये। ऊपर शिक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा गया है, सोवियट रशिया की ही बाबत लिखा गया है।

सोवियट शिक्षा पद्धति से एक तो शिक्षा थोड़े ही समय में दिग्दिगन्त व्यापिनी हो जायगी और पकी सच्ची उच्च कोटि की होगी, दूसरे अच्छा फल निकलने से पुरानी पद्धति का प्रेम जाता रहेगा। धनिकों को भी इस पद्धति के साथ प्रेम होगा।

---

* गुरुकुलों के नमूने पर समझना चाहिये कि यह छात्र उपनिवेश बनते हैं, हां शिक्षा भारत के गुरु कुलों की भांति श्वेतकेतु के समय की नहीं दी जाती। नवीन इतिहास व विज्ञानानुमोदित बात बतलाई जाती है, बच्चों का समय सन्ध्या पूजा प्रार्थना में नष्ट नहीं कराया जाता।

कम्यूनिष्ट बच्चों के शत्रु नहीं बल्कि उनके सुधारक हैं। कम्यूनिष्ट पार्टी को चाहिये कि किण्डर गार्टन स्कूलों, सन्तान उपनिवेशों, स्कूलों आदि को नई पद्धति से कृतकार्य करके दिखला दें क्योंकि उनकी असली विजय इसी पर अवलम्बित है। कम्यूनिष्ट पार्टी की स्त्रियों का प्रधान काम है कि स्त्रियों को बतलाय और रुचि दिलाय कि व अपने बच्चों को इन नये ढंग के स्कूलों में भेजें। साथही जो पिता माता अपने बच्चों को इन स्कूलों में भेजें वे और दूसरे बच्चे वालों को साथ लेकर एक सगठन करें जो इन संस्थाओं की निगरानी करता रहे ताकि काम ठीक चलने लगे।

प्रारम्भिक तय्यारी बच्चों की ७ वर्ष तक होती है फिर वे स्कूल में देने के योग्य हो जाते हैं। शिक्षा अनिवार्य हो, अशुल्क (मुफ्त) हो, छोटी ही श्रेणियों में नहीं लेकिन अथ से इति तक बिना फीसकी पढाई हो। ७ वर्ष से १७ वर्ष तक देशका प्रत्येक बालक अवश्य शिक्षा पावे, शिक्षा अनिवार्य हो अशुल्क हो, एक सी हो, भेद भाव रहित हो, समता व्यावलम्ब्य का आदर्श दिखाने वाली हो।

रूसमें लड़के लड़की एकसाथ पढाये जाते हैं — दोनोंको एक साथ और एकसी शिक्षा दी जाती है। प्राथमिक (Primary) माध्यमिक (Middle) और उच्च (High) स्कूलों वर्गीकरण और भेद न करके सबको एक करदिया गयाहै। इस एकीकृत हर एक स्कूल में एक शिक्षा सोपान बना दिया गया है, इसी में

होकर प्रत्येक बालक निकल सकता है, बल्कि हर लड़के लड़की को अवश्यही निकलना पड़ता है। यह किण्डरगारटेन से प्रारम्भ करते हैं और चोटी तक विना रोक टोक और भेद भाव के चले जाते हैं। यह साधारण अनिवार्य्य अशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध हरेक बच्चे के लिये है। वर्गों, जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों और समुदायोंके नामसे, अलगर धन लगाना और जुदार उद्देश्य से पृथक पृथक स्कूलों का होना जनता के लिये बहुत ही हानि कर होता है। इससे भेद भाव बढ़ता है और समता के बदले विषमता फैलती है। विषमता ही समाज के लिए विष होती है।

साम्यवादी प्रजातन्त्र का स्कूल एक श्रम-शाला हो अर्थात् शिक्षा और दीक्षा श्रम संयुक्त और श्रम के ही आधार पर हो बने। यह बात कई कारणों से बहुत जरूरी है। सब से पहले इसका प्रभाव शिक्षा को कृत कार्य्य बनाता है। शिक्षा न केवल किताबी होती है, न शिक्षक के मुंह से निकले हुये शब्दों पर ही समाप्त होती है, लेकिन बच्चा अपने हाथ से काम करके, अपने वैयक्तिक अनुभव से प्रत्यक्ष शिक्षा लेता है। प्रत्यक्ष और परोक्ष शिक्षा में बड़ा अन्तर होता है।

जब हमें प्राकृत पदार्थों को लेकर उनपर काम करने का अवसर होता है, तभी हम अपने प्राकृतिक परिकर को आसानी से समझ सकते हैं। इसी लिये मानसिक और शारीरिक काम को अलग अलग न रख कर एक साथ रक्खा गया है, जिससे शिक्षा पूर्ण हो। अधूरी अधूरी शिक्षा दो स्थानसे लेकर पूरी कर

की जरूरत मिट जाय। श्रम की बच्चोंको बड़ी जरूरत रहती है, इससे वे शक्ति शाली और स्वस्थ तो बनते ही हैं, साथ ही उनकी क्षमताभी बढ़ती जाती है, उनकी शक्तियों और योग्यताओं का विकाश और उत्कर्ष होता है। अनुभव ने सिद्ध करदिया है कि बच्चे जो समय स्कूलोंमें व्यवहारिक कामों के करने में लगाते उससे उनके औपपत्तिक ज्ञानमें (Theoretical knowledge) बाधा नहीं पड़ती उलटी सहायता मिलती है। जो सिद्धान्त केवल पुस्तक पाठी की समझ में नहीं आता वह व्यवहारिक काम करने वाला जल्दी समझ लेता है।

कम्यूनिष्ट समाज चाहता है कि उसका हरेक नागरिक कम से कम सब तरह की कारीगरियों और पेशोंके तत्वों को जान ले बेवाग्त किसी काम से अनभिज्ञ न रहे। कम्यूनिष्ट समाज में कारीगरों के संघ न होंगे। ऐसा नहोगा कि सुनारी, लुहारी, चर्मकारी सुनार लुहार और चर्म कारों के ही घरकी सम्पत्ति बन जाय। बड़े से बड़ा विज्ञानवेत्ता भी हाथ से काम करने का हुनर रखता हो। जो लड़का पढ़कर स्कूल से निकलता है उसे सिखाया जाता है कि 'तुम अध्यापक और आचार्य बनो या न बनो लेकिन तुम मूल्यवान पदार्थ पैदा करने वाले अवश्य बनो'।

बच्चा सबसे पहले खेलने में अपनी क्रियाशीलता (activity) देखलाता है। धीरे धीरे इस चतुराई के साथ बालक के खेल को बदला जाय कि उसे मालूम न पड़े और खेल उपयोगी काम बन जाय। जैसे छोटे बच्चों को काठ के टुकड़ों से जोड़ जोड़ कर

अक्षर बन जाते हैं तो उन्हें खेल जान पड़ता है, वे अक्षर पहचान जाते हैं और पढ़ने का बोझ उनपर तनिक भी नहीं पड़ता। बच्चे नकल उतारने में प्रकृति से ही निपुण बनाये जाते हैं, इस लिए उनके सामने काम करनाही उनको काम करना सिखाना है, हां, काम के औजार और मैदान के चुनने में चतुराई से काम लेना पड़ता है। बचपन से काम करते रहने वाला व्यक्ति कभी मजूरी को बुरा न समझेगा। उसके काम में स्वभाविकता, उसके भावों में पवित्रता और विचारों में शुद्धता पैदा हो जायेगी। श्रम मनुष्य के लिये वैसाही जरूरी है जैसे अन्न वस्त्र। इन जरूरतों को स्कूल में ही बच्चों के दिलों और दिमागों में भर कर पुष्ट कर देनी चाहिये

'कम्यूनिष्ट ... निश्चय है कि जब उनकी समाज ... जोर के साथ शिल्प की उन्नति होगी तब आवश्यक होगा कि बहुत सी श्रम शक्ति एक काम से हटा कर दूसरे काम में लगा जाय। मानलें कि कातने और बुनने के काम में नई खोज ... इतनी उन्नति होजाय कि कातने वालों और कोठियों की जरूर... बहुत कम रह जाय और रुई की पैदावार बढ़ाने की जरूर... ...ढ़ जाय, तो इन बुनने, और कातने वालों को हटाकर रुई की खेत... ...काम में तभी भेजा जा सकता है कि वे उस काम का थोड़ा ...न परिचय रखते हों। इसलिए कम्यूनिष्ट चाहता है कि हरए... इसका नागरिक ... कामों को थोड़ा थोड़ा जरूर जानने वाल... बने। आज कल धनिक ... में सौदागरों का यह स्व...

परायण प्रबन्ध होता है कि बहुत से मजूर बेकार पड़े भूख मरते फिरते हैं काम पड़ने पर इन्हीं को लेकर जोत दिया जाता है। लेकिन कम्यूनिष्ट शासन में तो भूका बेकार, निकम्मा फिरने व भीक मांगने वाला कोई होगा ही नहीं, इस लिए जिस किसी औद्योगिक विभाग में कारीगरों, काम करने वालों की कमी होगी वहां दूसरे काम करने योग्य कारीगरों को ही लगाना पड़ेगा। जो एक काम वाले लोग दूसरा काम न जानते तो यह बात असम्भव हो जायगी, अत हरएक आदमी को कई तरह का काम जानना बहुत जरूरी सिद्ध हुआ। इस जरूरत को पूरा करने के लिये स्कूल से ही प्रबन्ध किया जाना उचित है।

- १७ वर्ष की उम्र तक तो हरएक नागरिक एक समान अनिवार्य शिक्षा पायेगा। इनमें सैनिक शिक्षा भी शामिल होगी। प्रत्येक छात्र को वर्ष में कुछ दिन खास खास फौजी कामों को ही सीखना पड़ेगा। लेकिन इस तरह के साधारण ज्ञान वालों के सिवा विशेषज्ञों की भी आवश्यकता रहती है। कोई चमड़े के काम का विशेषज्ञ हो, तो कोई लोहे के काम का, कोई खदान के काम में निपुण हो तो कोई सेना परिचालन और युद्ध निर्माण में। बिना इस तरह के विशेषज्ञों के काम नहीं चल सकता। विज्ञान का इतना विस्तृत क्षेत्र है कि सब विज्ञानों को सब पूरी तरह से नहीं जान सकते। इस लिए ऊपर कहे हुए स्कूल की शिक्षा के अतिरिक्त विशेष शिक्षा का दरवाजा भी खुला रखना पड़ता है। हां, यह जरूर है कि जब तक साधारण शिक्षा के अन्तिम सोपान

तक छात्र न पहुँचले तब तक उसको विशेपज्ञता की ओर ध्यान देने का अवसर नहीं दिया जाता। १४ से १७ के भीतर की उम्र तक में स्कूल शिक्षा काल में ही यह मालूम हो जायगा कि किस छात्र की क्या योग्यता है और कैसी अभिरुचि है तदनुसार हर एक छात्र को विशेपज्ञता का अवसर दिया जायगा। छात्र का अभिरुचि के विरुद्ध विना सोचे समझे जो विपय सौंपा जायगा तो कृत कार्य्यता बहुत कम होगी। इस लिये श्रमिकों के साधारण ज्ञान में बाधा देकर विशेपज्ञ बनाने की कोशिश अच्छी नहीं। कम्यूनिष्ट स्कूल में सत्तरह वर्ष की उम्र तक छात्रों में छात्रपन ज्याद॰ रहताहै, श्रमिकपन कम और क्योंकि इस इस उम्रमें प्रजा तन्त्र की इच्छा भी यही रहती है कि यह देश के बजट में धन न दें किन्तु सुयोग्य नागरिक और श्रमशील बनें। अठारह वर्ष का होने पर शिष्य श्रमिक बनजाता है, उसे अपने हिस्से का काम कर देने के बाद विशेपज्ञ बनने का पूरा अधिकार होता है। काम के घण्टों के बाद इसी लिये विशेपज्ञों के तय्यार करने का, प्रबन्ध किया गया है। जो अपना मौलिक दायित्व पूरा करने के बाद चाहे विज्ञान विशेप का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर सकता है। दस्तकारी कारखानों की उन्नति होने पर आठ घण्टे का दिन काम करने वालों के लिये माना जायगा, आठ घण्टे काम करने के बाद जो चाहे अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकता है। अगर कोई विशेप योग्यता सम्पन्न व्यक्ति हुआ तो उसे कुछ वर्षों के लिये काम से बरी भी कर दिया जाता है जिसमें यह

किसी विज्ञान विशेष का पूरा जानकार बन सके और नई २ खोज और अभिनव अविष्कार कर के मनुष्य जाति के हित का हेतु हो। कभी २ बिल्कुल काम से बरी न कर के काम के घण्टोंमें कमी कर दी जाती है, आठ की जगह चार ही घण्टे काम लिया जाता है बाकी समय विशेष अध्ययन और खोज के लिये दे दिया जाता है।

अभी तक कम्यूनिज्म का पूरा पूरा प्रबन्ध हर विभाग में नहीं हो सका इस लिए उच्चतम शिक्षा का अन्तिम रूप ब्योरे-वार नहीं बतलाया जा सकता, तो भी उद्देश्य की झलक स्पष्ट है। शिक्षालय जुदा जुदा किस्म के होंगे। ऐसी जगहें भी होंग जहा संक्षेप में ही शिक्षा दी जाया करेगी। प्रत्येक विषय का संक्षिप्त पाठ्य क्रम को जान लेने से भी बहुत काम हो सकता है। प्रयोग शालायें और बहुकला-शिक्षा-प्रद विद्यालय भी होंगे। इन के द्वारा आवश्यकता अनुसार आदेश देकर खोजें कराई जायँगी। लेकिन इस में सन्देह नहीं कि वर्तमान विद्या-लयों की शिक्षा पद्धति, उन के अध्यापक गण का काम तमाम हो चुका। नवीन प्रबन्ध में अध्यापकों ओर शिष्यों का भेद बहुत कम हो गया है, अब बिल्कुल मिटा देना होगा। धनिक शासन काल का एकत्र किया हुआ विद्या धन अब सब श्रमिकों को भी प्राप्य हो और होना चाहिये। यह कम्यूनिस्ट का प्रधान ध्यान है।

कम्यूनिस्टिक सरकार जब कि भूमण्डल पर बनने जारही है तो हर कम्यूनिस्ट को अपने पूर्वाधिकारी के अनुभव को सीख लेना व जान लेना कृतकार्य्यता के लिए अनिवार्य है। क्योंकि इस के पहले का कोई इतिहास ऐसा नहीं जो हमारी इस काम में मदद करे। रूस में कम्यूनिज़म की विजय होने के बाद बेहद पुस्तकालय खुले हैं जिन से श्रमिकों को पढ़ने की पूरी सुविधा होगई साधारण जनता के लिये अनेक शाला और क्लब (सम्मिलन स्थान) कायम हुये हैं, नये विश्व विद्यालय स्थापित हुए हैं। बायस्कोप दिखाने के रंग मञ्च जिन से पहले जनसमूहों में दुर्गुण, दुर्व्यसन, और कदाचार की वृद्धि होती जाती थी और तमाशा दिखलाने वाले गरीबों के पैसे से मोटा माल होते थे, अब शिक्षा देने वाले उच्च भाव और आदर्श जीवन बनाने वाले स्थान बन गये हैं। इन से साम्यवाद के पवित्र भाव उत्पन्न कराये जाते है। व्याख्यान सुनने, कसरत करने आदि उपयोगी कामों के लिए सब लोगों को खूब समय मिलता है क्यों कि अब श्रमिकों को थोड़ी देर काम करना पड़ता है और किसी प्रकार की भी किसी बातमें धन बिल्कुल नहीदेना पड़ता। छुट्टियों में इन्हें स्वास्थ्य आनन्द और अनुभव प्राप्त करने की गरज से खूब फिरने का अवसर मिल जाता है जिस से इन्हें देश विदेश का काफी ज्ञान मिलता रहता है। यह सब बात केवल कम्यूनिस्ट शासन में ही सम्भव हैं, दूसरे देशों में स्वप्नवत हैं। सोवियट सरकार ने सभी बातों में बड़े बड़े भारी उपकारक

सुधार किये हैं किन्तु जितना अधिक और सुन्दर सुधार शिक्षा विभाग में हुआ है उतना और विभागमें अभी तक नहीं होसका। आमदनी का सब से अधिक भाग शिक्षा में लगाया जाता है। शिक्षा ही सुधार और उद्धार का मूल कारण है। जो काम सोवियट सरकारने रूसमें ७-८ वर्षमें किया उस का सोवां हिस्सा भी इंगलैंड या भारत में १५० वर्ष से अधिक के भीतर भी नहीं हो सका इस का कारण स्पष्ट है, सभी जानते हैं ।

जब तक कम्यूनिजम को समझ कर शिक्षा देने वाले अध्यापक नहीं तब तक शिक्षा का वास्तविक प्रचार नेकनीयती के साथ नहीं हो सकता। धनिक प्रधान शासन में सम्पन्नों की जरूरत के मुताबिक शिक्षा होती है और कम्यूनिस्ट सारे ही देश वासियों के हिताहित का ध्यान रख कर सब को एक समान शिक्षा देता है।



ग्यारहवां अध्याय

धर्म

(Religion.)

धर्म और कम्यूनिज्म एक दूसरे से संगति नहीं रखते। कार्ल मार्क्स कहता है 'धर्म जनताकी अफीमहै।' धर्मके द्वारा प्राचीन काल से आजतक एक भी लाभ सर्व साधारण को नहीं पहुँचा। अत्याचारियों के हाथ में धर्म ऐसा निमित्त कारण है जिससे प्रजा में विषमता स्थापित होती चली आती है। यह मनुष्यों में समताको नहीं रहने देता, इसके द्वारा धनिक, विद्वान और राजवर्गीय लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं, श्रमिकों में इसी के द्वारा गुलामों की आदत कायम रखी जाती है।

बहुत लोग कहेंगे कि ईश्वर में विश्वास करने और किसी धर्म विशेष के मानने से कम्यूनिज्म को कोई हानि नहीं पहुँचती, हम ईश्वर और कम्यूनिज्म दोनों में ही विश्वास रखते हैं तो इसमें क्या हानि? लेकिन यह बात न व्यवहारिक दृष्टि से ठीक है और न सिद्धान्त की (सैद्धान्तिक) दृष्टि से ही। कम्यूनिज्म मनुष्यों के ही पारस्परिक सम्बन्ध के विचार पर आधार रखता है। ऐतिहासिक प्रकृतिवाद के सिद्धान्त के वैज्ञानिक आधार पर सामाजिक उन्नति और उत्कर्ष के कानून दृढ़ हुएहैं। यह कानून निर्दिष्ट हैं, इसको कम्यूनिजमकेसबसे बड़े आचार्य्य'कार्लमार्क्स'

और 'फ्रीडरिक एञ्जिल्स ने' सिद्ध कर दिया है। इससे विस्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक उन्नति किसी प्रकार की अलौकिक शक्ति से नहीं हुआ करती। ईश्वर और अलौकिक शक्ति का भाव मनुष्य जाति के प्रारम्भिक अज्ञानावस्था में पैदा होता है और प्रौढ़ता आने पर विलीन हो जाता है। बचपन के विचारों को जवानी के व्यवहारिक अवस्था में स्थान नहीं मिलता, न उस कशमकश में ही इनका पता लगता है जो मनुष्य और प्रकृति में चलती है। अनहोनी बातों पर, मोजजों (चमत्कारों) पर विश्वास दिलाकर मनुष्यों का केवल मात्र अज्ञान चिरस्थायी बनाया जाता है। इस तरह के छल से यार लोग अपना काम बनाते हैं, और श्रमिक, नादान, बेपढ़े लुटते हैं। बड़े २ महन्त, पोप, पण्डे पुजारी, मौलवी मुल्ले, इसी अज्ञान स्थापना की बदौलत आप मजे उड़ाते हैं, धनिकशासन की सत्ता कायम रखते हैं और गरीब लोग बराबर लुटा करते हैं।

जो घटनायें रात दिन प्रकृति में होती रहती हैं इनमें से एक का भी कारण अलौकिक या अप्राकृत देखने में नहीं आता। 'लाप्लेस' ने खगोल पर इतनी बड़ी पुस्तक लिख डाली कहीं भी उसे अलौकिक शक्ति की कल्पना की जरूरत न हुई। विज्ञान की गाड़ियों पुस्तकें मौजूद हैं, विज्ञानसे आज संसार को सभी काम में सहायता मिल रही है, पर कहीं भी ईश्वर और धर्म्म का सहारा नहीं लिया जाता। बड़ेर नास्तिक भी आश्चर्य्य जनक आविष्कार करते हैं। लोकयात्रा के सारे ही काम मनुष्य-

नास्तिक की ही तरह बिना ईश्वर की जरूरत भान किए हुए करता है। समस्त उन्नति की जड़ प्राकृत विज्ञान है न कि ईश्वर व अलौकिक शक्ति। प्राय: सभी परजीवी (मुफ्तखोर) ईश्वर के ही नाम से हमें लूटने के लिये लुरियाया* करते हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी की पद्धति अपने सदस्यों (मेम्बरों) को आचरण करने के लिये निश्चित राह बतलाती है। इसी तरह हरेक धर्म्म का नीति शास्त्र अपने अनुयायियों को चलने के लिये प्रथा निर्दिष्ट करता है। जैसे ईसाई धर्म्म उपदेश करता है कि 'जो तेरे दाहिने गालपर थप्पड़ मारे उसे तू अपना बायां गाल भी फ़ेर दे कि भाई इस पर भी मार ले।'

लेकिन बहुत हालतों में कम्यूनिस्ट सिद्धान्तों और धार्मिक आज्ञाओं में इतना बड़ा अन्तर होता है कि दोनों में मेल हो ही नहीं सकता। वह कम्यूनिस्ट जो धर्म्म की आज्ञाओं को अस्वीकार करता है और अपने दल (पार्टी) के अनुशासन के अनुसार काम करता है वह किसी दूसरे धर्मका अनुयायी नहीं हो सकता, फिर जो अपने को कम्यूनिष्ट कहता है और किसी धर्म्म का अनुयायी बना रहता है और धर्म्म के नाम पर अपने दल के विधानों के विरुद्ध चलता है वह कम्यूनिष्ट नहीं रह जाता। कम्यूनिज्म स्वतः एक धर्म्म है जो प्राकृत विज्ञान की नींव पर ही खड़ा होता है।

---

*झूठा प्रेम बढ़ानेका जो प्रयत्न करता है उसे लुरियाना कहतेहैं।

धर्म के साथ हमारे झगड़े के दो पहलू हैं, हरेक कम्यूनिस्ट को चाहिये कि इन दोनों के भेद को खूब समझले। एक ओर तो हम सम्प्रदायों के साथ झगड़ना है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा खास तौर पर संगठन करके धर्म का प्रचार होता है, और इनके प्रचार की असली गरज होती है जनता को अज्ञानान्धकार में डाल रखना और धर्मका गुलाम बनाये रहना। दूसरी ओर, हमें अधिकांश जनता के उन अन्ध विश्वासों और पूर्व-कुसंस्कारों से लड़ना है जो उसमें (जनता में) गहरा घर कर गये हैं या उसके हृदय पर अंकित हो रहे हैं।

लोगों का दावा होता है कि सम्प्रदाय (मुसलमान, ईसाइ, हिन्दू, जैन कोई भी हो) अपने धर्म के विश्वासों का समाज है जो खास बातों पर, खास किताबके अनुसार चलता है। लेकिन कम्यूनिस्ट कहता है, नहीं 'सम्प्रदाय उन लोगों का संघ है जो धर्मानुयायियों से धन ठग कर अपनी जीविका का मार्ग दृढ़ बनाये रखते हैं, गरीबोंके अज्ञान और अविद्या से अनुचित लाभ उठाते हैं। धर्म याजक समूह जमींदारों व पूंजीपतियों के ही समान है जो शासनतन्त्र, (State or Government) से मिले रहकर श्रमिकों को दुहा करते हैं। यह तीनों ही प्रकार के लोग शासनतन्त्र व श्रमिकों के सताने में मदद देते हैं और शासनतन्त्र काम पड़ने पर, इनको मदद देता रहता है। धर्म और शासन तन्त्र की 'मिली भगत बहुत दिनों से है। मन्दिर, मठ, महन्तों की गद्दियां सभी के साथ जमीन, जागीर लगे हैं। तब यह स्वयं

जमींदारी को गद्दी नहीं तो और क्या है। कई कई महन्त तो खासे महाराजाधिराज हैं। इनसे गवर्नमेन्ट को लाभ पहुँचता है गवर्नमेन्ट से इन्हें लाभ पहुँचता है इसीलिये यह युग बंधा रहता है। बिना युग के फूटे श्रमिक बाजी नहीं जीत सकते। इसलिये पहली नर्द जो मारी जानी चाहिये वह धर्म्म है।

धर्म्म की दस्तन्दाजी से विशेष कर महन्तों मठाधीशों और पोपों की जमीन्दारी से धनिक शासन के पूँजीपति भी अनेक बार घबरा उठते हैं क्योंकि यह चाहते हैं यह सारी सम्पत्ति हमारे पास आजाय। यह तो कारण है कि योरोपमें धर्म्म और शासन का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध तोड़ दिया गया। आज कल धर्मयाजकों के वे अधिकार नहीं हैं जो पहले थे, फिर भी थोड़ी बहुत लागलपेट बनी ही है। कम्यूनिस्ट धर्म्म रूपी फसाद की जड़ को एक दम भस्मसात् करके मनुष्यों को सुखी बनाना चाहता है। मनुष्य जाति को सुखी बनाना ही सब में प्रधान धर्म्म है।

आज कल भी हम देखते हैं कि धर्म्मयाजकों को बहकाकर, उत्कोच देकर, इमचारों द्वारा उत्तेजित करके देश में विद्रोह का बीज बोया जाता है ताकि धनिक शासन की नींव हिलने न पाय, पर यह अब हो नहीं सकता, इसकी जड़ हिल गई, इस विष वृक्ष को अब टूटकर गिरना ही पड़ेगा, कोई दिन की ही देर है। ईश्वर की ही कल्पना से राजा, गुरु और महन्तों पोपों,

खलीफों और इमामों की कल्पनाएं हुईं और ससार मिट्टी में मिला, इस बिगाड़ का सुधार जरूरी है।

आजकल सोवियट सरकार ने गिरजा के मकान, धन, सम्पत्ति छीनकर श्रमिकों को दे दी है। किसी भी मन्दिर, गिरजा या मसजिद का काम नहीं रखा। अब धर्म्म प्रत्येक नागरिक का वयक्तिक काम है, धार्मिक समाज, नीति और राजनीति का कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया। धर्म्म की मददसे श्रमिक सरकार अपने को दृढ़ नहीं बनाना चाहती।

स्कूलों से भी धार्म्मिक शिक्षा को इसीलिए बहिष्कृत किया गया है कि इससे मनुष्यों के आचार विचार में खराबी फैलती है, बालकाल से धर्म्म का विष घुसने लगता है, बच्चे गुलामी और कायरता सीखते हैं। धर्म्मान्धता के फैलने से जातिया नष्ट हो जाती हैं इसलिए इसकी जड़ इसी तरह कट सकती है कि धर्म्म पुस्तकों का पठन पाठन जातीय संस्थाओं से हटा दिया जाय। जैसे प्रेम अन्धा कहलाता है वैसे ही विश्वास भी अन्धा कहा जाता है। कम्यूनिष्ट बिना आंख खोले किसी काम का करना अच्छा नहीं समझता, इसलिये अन्ध विश्वास को हटाकर आंख से देखने के बाद बातों का विश्वास करता है, विज्ञान के सामने सर झुकाता है, कविता व उपन्यास कौशल और गप्पों को विज्ञान का स्थान देना पाप समझता है। जिस धर्म्म की जड़ प्रत्यक्ष मूर्खता और नादानी पर आश्रित है उस धर्म्म और उसके अधिष्ठाता कल्पित ईश्वर को- विज्ञान स्थान प्रदान

करने को तय्यार नहीं हो सकता। लुटेरे धर्म्म का समर्थन करते हैं, धर्म्म लुटेरों का समर्थन करता है। आजकल भारत में अधिक दुराचार और कुकर्म ब्राह्मणों में ही देखा जाता है, या उन लोगों में जो इन ब्राह्मणों और धर्म्म याजकों के गहरे भक्त हैं, इसका कारण धर्म्म ही है। पापमूलक धर्म्म न होता तो हमें तारकेश्वर, गया, प्रयाग, प्रभृति में सहस्त्रों बदमाशों के अड्डों को महन्त की गद्दी के नाम से देखने का दुर्भाग्य न प्राप्त होता, न मुसलमान मौलवी, मुल्ले, मुजावर सज्जाद-नशीं, पीर और ख्वाजा मुसलमान जगतको मनुष्य जाति का शत्रु बनाकर उन्हें कठपुतली की तरह मनमाना नाच नचाते।

कैसे अन्धेर की बात है कि विज्ञान विरुद्ध मजहबी गप्पों और बेवकूफियोंको धर्म्म कायम रखना चाहता। गोल धरा को चपटी चौकोण बतलाने की बेवकूफी अल्लाह मियां ने की, धार्मिक किताबों ने इस अशुद्ध बात का प्रचार किया। अब संसार समझ गया कि पृथ्वी गोल है फिर भी हम गलती करने वाले ईश्वर, ऋषि, मुनि, पैगम्बर,अवतार को छोड़कर सत्य की शरण में आने को तय्यार नहीं। दक़यानूसी रद्दी हजारों वर्ष की भद्दी क़िताबों पर मरना सिवा बजूमूर्खों के और किसी भी आंख वाले से नहीं हो सकता।

बच्चे जो स्कूल में वैज्ञानिक सत्य सीखकर आते हैं उन्हें धर्म्म पुस्तकें बहकाती हैं और असत्य पाठ पढ़ाकर उनकी आखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करती हैं, इसलिए धर्म्म

पुस्तकों को पढ़ना बहुत ही हानिकर है। बीसवीं सदी में ऐसा कौन लण्ठ होगा जो दूध दही के समुद्रों, अमृत और शराब के हौजों, हूरों और अपसराओं की गप्पों में अपना जीवन नष्ट करेगा। हममें स्वतंत्र विचार की आदत हो, हमें धर्म्म की अफीम खिला कर बालकपन से निकम्मा न बनाया जाय, यह उद्देश्य प्रत्येक समझदार का होना चाहिये।

आज कल मनुष्य इतने निकम्मे हो गये हैं कि वह किसी बुराई के हेतु को ढूंढ कर उसके हटाने में श्रम नहीं करते, यह कह कर चुप हो जाते हैं कि ईश्वर की यही मर्जी थी, भाग्य में ऐसा ही लिखा था। बहुतेरे भोले भाले लोग निमाज रोजों से, जप, तप, पूजा पाठ से ही अपने सारे कामों को ईश्वर द्वारा सिद्ध कराना चाहते हैं। एक बार नव द्वीप में मेरे एक भोले भक्तराज ने कहा कि यह हजारों विधवायें भजन करने से सदाचारिणी बन जायेंगी। मैंने प्रश्न किया कि इतने वर्षों में आप ऐसी कितनी विधवाओं के सदाचारिणी होने की जिम्मेवारी लेते हैं जिन्हें भजन ने ब्रह्मचारिणी बनाया हो? इसका उत्तर हँस कर टाल दिया गया। सच तो यह है कि संसारकी बरबादी की जड़ धर्म्म और ईश्वर है जिस दिन इसका अन्त होगा मनुष्य जाति के दुखों का भी अन्त होजायगा।

बारहवां अध्याय.

उद्योग का सम्विधान।

(Organisation of Industry)

श्रमिक समुदायका पहला काम होता है भोग्य पदार्थों की पैदावार का साधन अपने हाथ में लेना। इस के लिए उन्हें जमींदारों को जमीन से, कोठीवालों और सौदागरों को कोठियों और बड़ी बड़ी सौदागरी की दुकानों से बेदखल करना पड़ता है। इस बेदखल करने का यह अर्थ नहीं है कि श्रमिक धनिकों को लूट कर सारी स्थावर जंगम सम्पत्ति आपस में बांट लें और धनिकों की तरह रहने लग जायें। इस तरह पर पहले मालिकों को बे दखल करके जमीन धन सम्पत्ति सब श्रमिक प्रधान प्रजा तन्त्र के पास खालसे में रहती है। अर्थात् राष्ट्रीय सम्पत्ति बन जाती है। इस पर उन लोगों का जिन्हें बे दखल किया गया है उतना ही स्वत्व होता है जितना बे दखल करने वालों का। बात सिर्फ यह है कि सब एक समान आयें पहरें रहें सहें, प्रकृति पर सब का अधिकार बराबर है, यह बना रहे, आपा धापी मिट जाय।

इस लिये उद्योग धन्धों का सगठन करना अभीष्ट होता है। न कि किसी को लूट कर आपस में हिस्सा रसदी बांट लेना। यदि श्रमिक लोग ऐसा करें तो 'सोवियट' सरकार और बूर्जवा

सरकार में कोई अन्तर ही न रह जाय। लूट खसोट को जड़ से सदा के लिये मिटा देना ही साम्यवाद का मुख्य उद्देश्य है। इस सम्पत्ति के राष्ट्री करण का नाम 'नेशनेलाईजेशन आव प्रोपर्टी' है। पहले जब रूस में धनिक प्रधान शासन था, या जिन देशों में अभी 'सोवियट प्रजा तन्त्र' नहीं है, सम्पत्ति के राष्ट्रीय करण का अर्थ होता था 'सम्पत्ति को राज्य के हाथ में देदेना'। राज्य या शासक वर्ग के हाथ में सम्पत्ति का सौंप देना एक बात है और देश के श्रमिक शासित प्रजा तन्त्र के हाथ में सौंपना दूसरी बात है। ई० आई० आर० रेल्वे बृटिश सरकार के हाथ में आगई लेकिन आज तक उस से प्रजा को कोई भी लाभ नहीं पहुंचा, जो हाल पहले था वही अब भी है। इस तरह का नेशनेलाइजेशन' धनिक शासन पद्धति का काम है। सोवियट सरकार की रेलों में सब को एक सी सुविधा होगी। पहले दूसरे तीसरे दर्जा का भेद करके एक को दुख दूसरे को सुख देना घोर पाप और नारकीय कृत्य है। सोवियट प्रबन्ध में तो भाड़े की किसी को जरूरत ही न होगी। राष्ट्र की रेल होगी राष्ट्र के सवार होने वाले होंगे राष्ट्र के काम करने वाले होंगे। हम ऊपर एक स्थान पर बतला आये हैं सिक्का (चांदी सोने आदि की मुद्राओं) की जरूरत ही न रह जायगी। जिन अभागे देशों में सोवियट सरकार स्थापित न होगी उनके साथ व्यवहार करने के लियेजो सोने चांदी की जरूरत पड़ेगी वह हमारे अच्छे सुश्रृङ्खलित उद्योग के द्वारा पैदा हुए

मालों से रफा हो जायगी और देश की आकरों का सोना चांदी भी इस काम में लाया जा सकेगा। सार काम तो उद्योग धन्धों को व्यवस्थित करना है जिससे देश का एक भी व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष, बच्चा हो या बूढा, बीमार हो या तनदुरुस्त कदाचित अन्न वस्त्र की कमी का दुख न उठावे, किसी को भीक मागने की जरूरत न पडे, भूक से, सड़कों पर पड़े हुए ऋतु की क्रूरता से मरने का दृश्य स्वप्न हो जाय। यही साम्यवाद है, इसीका नाम कम्यूनिज्म है जिसको बाजे बाजे गधे कह देते हैं कि कम्यूनिज्म का अर्थ है कि 'हर कोई हरकिसी की चीज लेले'।

अब पाठक समझ गये होंगे कि धनिक–शासन में 'सम्पत्ति का राष्ट्रीकरण' क्याहै और 'श्रमिक शासन' में क्या है। इसलिए वे केवल राष्ट्रीकरण के नाम से ही मुग्ध न होंगे, काम पड़ने पर देखेंगे कि किस प्रकार की सरकार ने देश की सम्पत्तिको लेकर सचमुच राष्ट्र भरकी सम्पत्ति बनाईहै। हम आगे चल कर देखेंगे कि इस तरह सम्पत्ति के राष्ट्रीय करण से क्या लाभ हैं।

इस राष्ट्रीकृत सम्पत्ति के प्रबन्ध से गरीब मजूर लुट नहीं सकते। प्रारम्भ में उन धनवानों को जिनकी सम्पत्ति राष्ट्रभुक्त की जायगी दुख मालूम होगा क्योंकि मनुष्य स्वभाव का गुलाम है, पर थोड़े ही दिनों बाद वह श्रम जीवियों में मिलकर सुखी हो जायँगे। श्रमिक शासन में आने के बाद अमीरों मेंसे नजाकत, जनाना पन जाता रहेगा, वे बीमार कम होंगे, रोटी ज्यादः और आनन्द से खा और पचा सकेंगे, डाक्टरों और वकीलों की

लूट का नाम संसार से उठ जायगा। जिस भोग लोलुपता ने दिन दिन बढ़कर संसार को नरक बना दिया है उसका मुंह काला हो जायगा, भूमण्डल स्वर्गीय लोगों का आवास बन जायगा। जब सभी श्रमिक होंगेतो भेद भाव कहा, कौन किसको लूटे और सतावे कोई अपने सिर पर आप नहीं चढ़कर बैठ सकता। फिर संसार की सारी बदमाशी, भोग की होड़ा होड़ी भूकसे होतीहै, भूके चोरी करते हैं। जब कारण मिट जायगा तो कार्य्य का स्वत: नाश हो जायगा। जिसके दांत में कष्ट हो वह दांत निकलवादे दर्द जाता रहेगा। जिस देश में अमीरों और धर्म्म याजकोंके साथ ही इनके सहायक राज्य की लूट खसोट न होगी उसमें दुख होना असम्भव है, उदाहरण के लिए हम उन जंगलों के निवासियों को जाकर देखें, जिनमें पापिष्ट सभ्यता फैलाने वाले दुष्ट नहीं पहुंचे, तो मालूम होगा कि वे हम सभ्यों से लाखवार अधिक सुखी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें ज्ञान कम है, प्रकृति से लड़ने की क्षमता उनमें कम है और हम में ज्याद: है, इसलिए बनसे साम्यवाद हम सीखें और उनको प्रकृति से युद्ध करना हम सिखलावें।

रूसस्थ सोवियट प्रजातन्त्र ने जो बेदखली का काम नवम्बर १९१७ में प्रारम्भ किया था अब पूरा हो चुका है। १९१७ में और सब धनिक प्रधान शासन लड़ाईमें उलझे पड़े थे उसी बीच में रूसने अपना काम बना लिया। आजका समय होता तो यह लोग रूस के मनोर्थ को विफल करके छुड़वे। इंगेरी की सोवियट

प्रजातन्त्र को उन्हीं स्वार्थी राष्ट्रों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया, नहीं तो आज हंगेरी में भी श्रमिकों का झण्डा गड़ा होता।

झगड़ा केवल मात्र इतना है कि हराम खोर चाहते हैं कि हम गरीबों मजूरों को मारकर खा जायें, गरीब मजूर यह चाहते हैं कि हम हरामखोरों का अपना सा श्रमिक बना कर हरामखोरी उनसे छुटा दें। पाठक देखलें कि इन दोनों में सदाशय, धार्मिक न्याय परायण, नीतिमान कौन है? स्वार्थी, पापिष्ट, बेईमान और अन्यायी कौन है?

रूस ने नहर, रेल, जहाजीबेड़े, धरती, कल-कारखाने, आकरें सब को राष्ट्र भर की सम्पत्ति मानलीं, व्यक्तियों का स्वामित्व मिटा दिया, इसलिए संसार भर के मनुष्यों में सोवियट सरकार के नागरिक सब से अधिक सुखी हैं। सच्चा रामराज्य सोवियट रूस में है। ह्ा, १९१७ से १९१६ तक और बाद में १९२४ तक जो उत्कर्ष और उन्नति उत्तरोत्तर सोवियट रूस ने की है वह इस बात की गवाह है, कि रूस में राम राज्य है।

लोग कहते हैं कि रूस में अराजकता है, वहां के उद्योग धन्धे नष्ट हो गये हैं, लेकिन वह बिल्कुल अशुद्ध परिस्थिति दिखला कर हमारी आखों में धूल डालना चाहते हैं। हमारे पास हाल में जो समाचार आये हैं उनसे मालूम होता है कि सब बड़े बड़े १७ विभाग हैं, आकर व धातु विभागों में और रसायन विभाग के अन्तरगत अनेकों उपविभाग हैं। सर्वत्र काम ओरों

पर चलता है। कारखानों से जितना माल पहले पैदा होता था उससे अधिक पैदा होता है। परन्तु पैदावार में गदर नहीं मचाई जाती, जरूरत के अनुसार पदार्थ पैदा किये जाते हैं, सोना चांदी लूटकर जमा करने के विचारसे देश के नागरिकों के आराम को भूलकर माल का बनाना व पैदा करना सोवियट सरकार बुरा समझती है।

छोटे छोटे दुकानदारों कारीगरों का काम यथा पूर्व चलता है, यह स्वयम् धीरे धीरे कम्यूनिष्ट के सिद्धान्त को समझते जाते हैं इनसे झगड़ा करने की जरूरत नहीं पड़ती।

पैदावार को समृद्ध और विकशित करना हमारा ध्येय है। उत्पादिका शक्तिकी तरक्की और फैलाव जहां तक ज्यादा हो सके उतना ही अच्छा, लेकिन गदर न होने पावे। पैदावार की गदर बुरी बला है। जहां तक हो देश के जरूरत की चीजें देश में ही बना ली जायँ। अन्न, रुई, कपड़ा, जूता, लोहे के सामान, काठ के सामान जितनी भी चीजें हैं सब देश में बनें और इतनी बनें कि देश वासियोंके खर्च को पूरा करदें, कुछ बच जाय परन्तु घटे नहीं। इसलिये सब विभाग में पैदा करने के लिए 'बल' बढ़ाना होगा। सिवा कामकाजियों के बलों की वृद्धि के या बलों को समुन्नत करने के तीसरा कोई उपाय पैदावार बढाने का नहीं हो सकता। लेकिन पहले तो श्रम और बुद्धि का प्रयोग ऐसे काम में होता था जिसमे वह चीज अधिक बनें जिसका दाम बाहर अधिक मिलता हो और अब अपने देश की जरूरत प्रधान रहेगी।

समरकाल में शत्रु लोग शक्ति भर देशान्तरों में परस्पर ालका आदान प्रदान न होने देने के लिये रोक लगा देते है सको 'ब्लाकेडिंग' कहते हैं। न हमें इस दशा में कच्चा या य्यार माल बाहर से मिल सकता है, न हम बाहर भेज कते हैं, न हम अपनी श्रम शक्ति को पूरी तरह काम में ला कते हैं न हमारे पास माल के पैदावार के वास्तविक जरिये ाकी रह जाते हैं। जमीदारों पूँजी ,पतियों से हथियार के ार से तेल और कोयला छीनना पड़ता है। इस तरह म्पत्तियों का राष्ट्रीकरण पहला काम है और पैदावार को चित अधार पर स्थापित करना दूसरा काम है। जब श्रमिक ामी हों तो उनकी जिम्मेदारी होती है, उनका कर्तव्य हो ाता है कि कोई भी सोवियट सरकार का नागरिक भूक और रदीसे न मरने पावे, दुर्भिक्ष और महामारी मनुष्योंको न उजाड़ कें। पहले कम्यूनिस्ट का काम होता है पुरानी पद्धति का नष्ट रना जब कम्यूनिस्ट विजयी हो गया तो उसका काम है नयी र्वहितकारिणी पद्धति को स्थापित करना।

पैदावार को बढ़ाने का अर्थ है मजदूरों ,द्वारा पदार्थों की यारी अधिक करना। जिनिस अधिक पैदा हो, हर तरह : अच्छी तरह से काम हो और अच्छाही फल निकले। भोग्य ार्थों के जिपज (पैदावार) की वृद्धि ही हमारा ध्येय है। के लिये सोवियट शक्तिने रूसमें पहले यह सोचा कि देश : सारी सामपसिक क्रिया शीलता को राज्य के बतलाये हुए

एक सार्वभौम प्रक्रिया (general plan) के अनुसार एक सूत्र में बांधा जाय, क्योंकि बिना इसके पैदावार उस स्थिति पर नहीं बनाई रखी जा सकती जिससे बाद में और ज्यादा बढ़ाई जा सके। आपा धापी, खींच तान और अन्धेर खाते को हटा कर सामञ्जस्य के साथ हरेक काम का अग्रसर करना ही कम्युनिज्म का प्रधान उद्देश है। उद्योग धन्धों के अच्छी तरह पर संगठित होने से कम्युनिस्ट समाज की जड़ दृढ़ और गहरी हो सकती है। अस्तु जरूर है सब के पहले ही धन और कच्चे माल के प्रस्तुत करने की राजकीय साधारण व्यवस्थामें उद्योग धन्धों को भी शामिल कर लिया जाय। क्योंकि इन चीजों के देने से काम करने वाले मजूर कारीगर श्रमिक संघटन के आश्रित बन जायगे और निश्चिन्त होकर काम करेंगे। इनमें हरेक अपने समाज का काम करने वाला होगा और श्रमिक राज का ही सहारा लेने से बाहिरी जबरदस्ती का डर न रहेगा।

दूसरी बात प्रारम्भ में यह होती है कि घरू काम करने वालों को राज्यसे आर्थिक सहायता भी मिले। यह बात धनिक शासनोंमें नहीं हो सकती, धनिक लोग बड़े २ ब्याजों पर रुपया देतेहैं और काम करने वाले अपने मेहनत का फल शतांश मुशकिल से भोग सकते हैं। भारत के किसानों की जो दशा जमीदारों और साहूकारों के हाथ में हो रही है, उसी से हम खूब समझ सकते हैं कि गला घोटने वाली रस्सी फांसी पर

चढाए हुए आदमी का सहारा बनती है। लेकिन श्रमिक राज्य वास्तव में घर पर काम करने वालों को धन की मदद दे सकता है और उससे राज्य की फरमायश के अनुसार काम तय्यार करा सकता है। इससे राज्य का अभिप्राय व्याज आदि के रूप में नफा करना और छीनना खसोटना नहीं होता, जैसा कि पाठक पिछले अध्यायों के पढ़ने से समझ चुके होंगे।

तीसरे यह प्रत्यक्ष है कि श्रमिक राज्य केन्द्रित व्यवस्था के अनुसार अपनी फरमाइशें घर पर काम करने वालों को ही दे, इन्हें ईंधन और कच्चा सामानभी पहुँचावे और यदि जरूरत हो तो औजार (Implements) भी देवे। यह फरमाइशें एक निश्चित ढ ग पर श्रमिक सरकार से दी जावें जिससे घर पर काम करने वाले सामाजिक पैदावार के सम्मिलित साधारण ढाचे में शामिल हों। इस तरह पर धीरे २ वे राज्य के अ ग हो जायगे और अपनी हानि लाभ को देख कर स्वयम् उसका आदर करने लगेंगे।

फिर इस तरह पर जो सहायता दी जायगी उसके साथ यह शर्त होगी कि वे अपने को दूसरे काम करने वालों की तरह संगठित करलें। इस तरह एक प्रकार के सभी काम करने वाले सगठित हो कर मिल कर काम करने वालों का समूह (cartels) बन जायंगे और एक २ विभाग के बड़े २ कारखानों और कोठियों का काम देंगे। इस रीति से सारे राज्य का काम सुन्दर सुसंगठित होकर सब को सुख देने वाला होगा। इस

पद्धति का अभीष्ट यह है कि घर पर काम करने वाला को सहायता और प्रोत्साहन देकर अनायास बिना कष्ट के बड़े भारी एकी भूत, सुसगठित और कल काटे वाली समाजिक पैदावार की पद्धति में बदल कर सदा के लिये निष्कण्टक कर दे। इस तरह पर काम करके इसमें सोवियट सरकार को बड़ी सफलता हुई है। (विस्तार के साथ उदाहरण जानने हों तो ए० बी० सी० आव कम्यूनिज्म पृ० २८७-८८ देखो) यह काम श्रमजीवी समवायों (Trade unions) के द्वारा ही ठीक हुआ है। कारीगरों, किसानों और मजदूरों के मिलकर रहनेसे ही काम होता है। लुहार, सुतार, कुम्हार आदि सब काम करनेवाले अपने २ कामोंका अलग २ गुट्ट बना कर काम करें तो हर विभाग में काम उन्नति कर जाय और एक से दूसरे को सहायता मिलने के कारण सब एक शरीर के अ ग हो जायँ। हम अकेले सुखी रहें मजे उड़ावें दूसरे चाहे मर जायँ, यह भाव न होने के कारण इनमें दुख का पता भी न रहे।

अब इन श्रमजीवी समवायों में और श्रमिक राजसत्ता में क्या सम्बन्ध होगा, इस पर दो चार शब्द कहने की जरूरत जान पड़ती है।

रूसके श्रमिक शासनने काम करने वालों के प्रतिनिधियों की सोवियट (council=कौंसिल, परिषद्) कायम की है, इसी के हाथों में राजसत्ता है। इसीके हाथ में श्रमसमवाय (Trade unions=मजूरों की सभा) हैं, इनके पास मिलकर [illegible]

वाले हैं। इन सब का काम फलदायक बनाने के लिये जरूरी है यह परस्पर गुंथे मिले हों। अब प्रश्न यह होता है कि ये किस सगठन के साथ शृङ्खलित किये जायँ? इसका उत्तर यह है कि इनमें जो सब से अधिक बड़ा और बलशाली हो उसी को केन्द्र चुनना चाहिये। ऐसी अंगी सोवियट-शक्ति द्वारा सगठित राजकीय सगठन है। इसलिये यह नतीजा निकलता है कि श्रमजीवी समवाय और मिलकर काम करने वाले इस तरह पर उन्नत हों कि वे साम्पत्तिक विभाग बनकर राज-सत्ता संरक्षक बनें और अन्त में शासक-राज-संगठन में बदल जायँ।

राज के खजाने से मदद पाने वाले समवायों को छोटी बात न समझनी चाहिये। रूस का राजकोष श्रमिकों की सम्पत्ति है। यही श्रमिकों की सत्ता का प्रधान लक्षण है। कारीगरों के छोटे २ समवायों को मिला मिलाकर बडे २ बलवान समवाय कर दिये गये हैं। जैसे धातु के काम करने वालों में सब धातुके काम करने वाले शामिल होगये है, इसीतरह सोने, चांदी, घड़ी, बिजली इत्यादि के काम को जानो।

अब श्रमिक शक्ति (Labour power) के सदुपयोग का विचार करते हैं। श्रम शक्ति पर ही सारा दारमदार होता है। जब पैदावार के ज़रिये करीब करीब अन्त हो जाते हैं और कच्चे माल दुष्प्राप्य होते हैं तब सारा दारमदार श्रम के ही सदुपयोग पर होता है। इस दशा में हमारा कर्तव्य है कि सारे ही काम करने वाले तत्वों को किसी न किसी काम

में लगा दें, कोई बेकार न रहने पावे। दुर्भिक्ष के समय हरेक व्यक्ति जो खाता है और काम कुछ नहीं करता वह समाज पर व्यर्थ का भार बन जाता है। ऐसे लोगों की तादाद बहुत हुआ करती है। इनके लिये सरल रीति से करने को बहुत सा काम होता है। उदाहरण के लिए, कस्बे के कूड़े का हटाना, गलियों, सड़कों और रेलों की मरम्मत करना, मार्गों की सफाई इत्यादि। लकड़ी काटना, ईंधन एकत्र करना, कच्चे मालों का जुटाना, लकड़ी का चलान इस तरह के अनेक कामों से अन्न वस्त्र प्रस्तुत करने के लिये सोच समझ कर जरिये निकालने पड़ते हैं। लेकिन काम का ढंग होना चाहिये, एक पद्धति से काम किये बिना कृतकार्य्यता कठिन हो जाती है। श्रमिकों में सच्चे साथियों की किस्त हो, खास खास काम में दक्ष लोगों की मदद हो। धन, बल या विद्या के अभिमान से भी कोई भी हराम खोरी न कर सके, सब मिलकर काम करें आवश्यक चीजें उत्पन्न करें और मिल बांट कर ही प्रेम पूर्वक खावें पहिनें और सुख शान्ति और समता के भाव को मन से हटने न दें।

तेरहवां अध्याय.

खेती बारी।

रूस में सन् १९१७ के नवम्बर की अतिक्रान्ति के बाद जब जमीदार लोग अपनी सम्पत्ति से बेदखल कर दिये गये तो तमाम धरती ग्रामीण किसानों की हो गई और छोटे छोटे कृषि स्थल बन गये। इस समय यद्यपि कम्युनिस्टों का बहुत कष्ट उठाने पड़े तो भी प्रारम्भ में ही बहुत कुछ भलाई देखने में आगई। उपर्युक्त अति क्रान्ति (revolution), के पहले योरोपीय रूस का भूमि नीचे लिखे अनुसार विभक्त था। डेस्याटाना बीधा की तरह एक नाप है।

गवर्नमेंट की धरती १३८०८६१६८ डेस्याटीना
ग्रामीण किसानो ,, १३८७६७५८७ ,,
खानगी लोगों तथा संस्थाओं के पास ११८३३२७८८,,

सरकारी धरती प्राय॰ जंगली होने के कारण जोतने बोने योग्य न थी, जब तक कि तोड़ी न जाती। जो धरती व्यक्तिग॰ लोगों के पास थी उस का हिसाब नीचे दिया जाता है।

बड़ी बड़ी जमींदारिया १०१७३५३५३ डेस्या॰
राजा की खास सम्पत्ति में ७८४३११५ ,,
महन्तों और उपासरों में ७३३७७७ ,,

म्युनिसिपल्टी के पास २०४२५७० "
फोसक लोगों " " ३४५६२४० "
फुटकर " " ६४६८८५ "

जहा तक कृपकों की धरती का सम्बन्ध है, सन १६०५ में इकट्ठे किये गये अकों के अनुसार १२२७७३४५ कृषिस्थल (Farms) थे। इस हिसाब से एक एक फार्म ११ ५ डेस्याटीना की ओसत से होता है। दूर दूर के प्रान्तों में फार्म तो बहुत बड़े बडे है, लेकिन धरती जातने बोने योग्य नहीं है, इस लिये रूस के मध्य प्रदेश में किसानों को धरती की बड़ी भूक रहती है। ये किसान जिनको कुछ पहले क्रीत दासता से छुटकारा मिला था, किसानों में सब से अधिक सख्या में हैं, इन के पास औसत से केवल पाने सात डेस्याटीना धरती है।

इन गरीब किसानों की खातिर बडे बडे जमीदारों की जमीन लेली गइ, इसी तरह बडे बड़े सौदागरों धनशाली किसानों और कम्पनियों की जमीनें भी बेदखली में आई। इस तरह किसानों की अतिक्रान्ति चली। अब अतिक्रान्ति के बाद की रूसी किसानों की दशा का हाल सक्षेप में कहा जाता है।

अतिक्रान्ति के पहले लोगों की खानगी धरती खास कर बड़े बड़े जमीदारों की धरतिया ऋण के भार से लदी थीं। ६ करोड़ डेस्याटीना (नाप एकड़ की तरह) धरती ३४६७८६४६०० रुबिल पर (रुबिल=२ शि० २॥ पैंस=१॥=)) बन्धक थी।

इसे रूसी रईसों और विदेशी बैंकों से अलग करके गरीब काश्तकारों (कृषकों) को सौंपा गया।

धीरे धीरे धरती पर से खानगी अधिकार हटा दिये गये और धरतियाँ हाथ से काम करने वाले किसानों को सौंपी गयीं। किसी को जोतने बोने की सामर्थ्य के बाहर (अधिक) धरती नहीं दीगयी। अब सबके अधिकार समान हैं। जाति या ऊंच नीच वंशज होने का भेद भाव कुछ नहीं रखा गया। जो साम्यवाद के संसार के कल्याण कारी सिद्धान्तों को मान कर सोवियट सरकार में रहते हैं सब समान हैं।

जमींदारी के अधिकार उठा कर छोटे बड़े धनी और निर्धन किसान एक श्रेणी भुक्त होकर सुख से काम करते और रहते हैं। जिन गरीबों के पास हल बैल बीज नहीं थे उन्हें मालदारों से लेकर देदिया गया। आज रूस में भिक्षुक कहीं नहीं दिखाई देते। धरती की समता का प्रबन्ध अभी तक जारी है। सब प्रकार की धरती काश्त में लाई गई है इस से निर्धनता और भूक प्यास का प्रश्न ही शेष नहीं रहा। जल, खाद, नलाई, कटाई मंडाई लुनाई सभी कामों का प्रबन्ध साम्यवाद के पवित्र सिद्धान्त के अनुसार इतना सुन्दर हुआ है कि कहीं पर तनिक भी अड़चन नहीं पड़ती सब काम सुखेन होता रहता है। पशु पालन परभी कम ध्यान नहीं है क्योंकि यह खेती के प्राण हैं। इन से खाद और, घी दूध मिलता है और जोतने बोने और माल ढोने के काम लिए बिना मनुष्य को

जीवन दोभर होसकता है अत इनकी यथावत सेवा मनुष्य का स्वार्थ जनित कर्तव्य है।

बहुत से जमीदारों के विषय (सम्पत्ति) जो १९१७ में लेकर राष्ट्रीय बनाया गया था उनमें कहीं २ आदर्श मेशीनें काम करती थीं कहीं सारा ही कारखाना अनुकरणीय साधनों और व्यवस्थाओं का नमूना था, कहीं पीढियोंका एकत्र वस्तु भाण्डागार था। इनको सबको सोवियट सरकार ने लेकर सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया और कृषि शिक्षा के लिये यहां उपयुक्त स्कूल और कालेज बना दिये। किसानों को प्रोत्साहित और जानकार करने के लिये सोवियट सरकार ने कृषि कारखाने (फार्म्स) भी बड़े विस्तृत रूप में बना कर सीधा राज की ओर से कृतकार्यता के साथ चलाये हैं। पशुशालाएँ भी इन कारखानों के साथ लगी है जिनमें पशुओं की नसलें सुधारी जाती है। उत्तम मोटा अन्न पैदा करनेकी तरकीबें व ताई जाती हैं। इन कारखानों के मेशीनों से काम पड़ने पर कोई भी किसान आकर बीज छाटने आदि के काम में सहायता ले सकता है।

हम लोगों के अभागे देश में कुशासन के कारण जो कुछ भी हम सीखना चाहते हैं बिना पैसा नहीं सीख सकते। निर्धनों के लिये तो एक प्रकार से शिक्षा का द्वार ही बंद है, यह बात रूस में नहीं है। सब प्रकार की शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। अमीर गरीब एक समान हो गए हैं।

जाति या राष्ट्र पापिष्ट है जो स्वार्थवश दूसरी मनुष्य जाति को व्यक्ति को या राष्ट्र को लूटता खसोटता है, ऐसे पापिष्ट राष्ट्रों की उन्नति मानव जाति को अभीष्ट नहीं है।

सन् १९१६ की शरद ऋतु में सोवियट प्रजातन्त्र (रूस) में १९०१ कम्यून, ३७०० कार्टेल, ६६८ सहयोग-कृषि समितियां थीं अब तो बहुत ज्यादः बढ़ गयी हैं। यही, बजड़ धरतियां भी दिन दिन निपजाऊ बनती जा रही हैं, लेकिन मिथ्यावादी लोग यह कहते हैं कि रूस की प्रजा दिन २ दुखी, निकम्मी, निरुद्यम और आलसी होती जाती है।

कार्टेल और कम्यून दोनों शब्दोंका भावार्थ जान लेना जरूरी है। एक तरह पर दोनों ही पर्याय वाचक शब्द हैं। रूस के ग्रामों में भी इन शब्दों के भावार्थ में भेद नहीं किया जाता, परन्तु-'कार्टेल' का काम है केवल वस्तु निपजाना, (पैदा करना)। यह केवल उत्पादिका संस्थायें इसका दूसरा काम नहींहै। जिसमें सब मिलकर पदार्थ पैदा करते हैं उस सम्वाय या संयोग का नाम आर्टेल है। लेकिन कम्यून माल पैदा करने के साथ साथ उसे स्थानान्तर में वितरण भी करता है, खर्च करने में भी योगदान करता है। उदाहरण-प्रयाग में एक कम्यून ने १ लाख मन अन्न पैदा किया तो उसका यह भी काम है कि जुदा २ केन्द्रों में हर केन्द्रों की आवश्यकता के अनुसार माल पहुँचाये और वहां से खाने वालों को खाने के लिए दे।

सोवियट सरकार मेशीनों की उपयोगिता समझती व श्रम के विभाग (Division of Labor) के लाभों को पहचानती है परन्तु सर्वत्र खेती बारी की यहां २ मेशीनें उपयोगी नहीं हो सकतीं, छोटे छोटे फारमों (कृषि कारखानों) में हाथ के ही द्वारा काम करना हितकर है, इसी प्रकार 'श्रम-विभाग' अर्थात् डिवीजन आव लेबर का यह परिणाम न होना चाहिये कि बहुत से मनुष्य सिवा पिन के टुकड़े करने के दूसरा काम जानें ही नहीं। सोवियट प्रजातन्त्र को यह दोष लगाना कि वह वैज्ञानिक उन्नति नहीं चाहता, कल कारखानों को नेस्त नाबूद करना पसन्द करता है, सम्पत्ति शास्त्र के सिद्धान्तों का तिरस्कार करता है-सर्वथा मिथ्या है।

सोवियट सरकार जानती है कि स्त्री बच्चों से कैसे और कितना काम लेना चाहिये, मनुष्यों को काम करने में कितना समय देना चाहिये क्योंकि वह बिना कमाये धनके खाली हराम-खोरों को अपने राज्य में रखना अपनी हतक समझती है। रूस में ऐसा नहीं हो सकता कि 'कमाए माइ बाबू खायें हम'।

रूस की धरती उर्वरा (निपजाऊ) है, यहां राइ, गेहूँ, बाजरी, जव, आलू पैदा होते हैं, फिर भी १६०१ से १९१० तक पैदावार का हिसाब देखते हैं तो रूस की पैदावार हालण्ड, इंगलैण्ड, जर्मनी और टर्की सब से कम हुई लेकिन १६११ से १६२० तक में कुछ ज्यादह हुई है। आशा है अबकी दशाब्दी

की रिपोर्ट बहुत अच्छी निकलेगी क्योंकि सोवियट का प्रबन्ध अब दृढ़, सरल, सर्व प्रिय होता जा रहा है।

पैदावार को सर्वत्र खर्च के लिए पहुँचाने का अलग प्रबन्ध है। खानगी सौदागरी या वाणिज्य की प्रथा तोड़ दी गई है। श्रमजीवी समवायों के कर्मचारियों द्वारा छोटे २ दुकानदारों द्वारा और दूसरी अनेक विधियों से माल देशवासियों को मिलता रहता है। इसका पूरा पक्का प्रबन्ध करने में कुछ समय लगेगा।



चौदहवां अध्याय

श्रम–रक्षा और सामाजिक कल्याण के काम।

श्रम संरक्षण अर्थात् श्रमिकों मजूरों की रक्षा क्या है, इस बात को समझ लेना जरूरी है। श्रमिक समुदाय, काम करने वाले लोग कम्यूनिष्ट पद्धति प्राप्त करने के लिये झगड़ते हैं। क्योंकि इस पद्धति के प्राधान्य से ही वे लोग स्वार्थ परायणों को लूट खसोट से बच सकते हैं। कम्यूनिज्म सेही यह सम्भव है कि उत्पादक दल बल की वृद्धि हो और ऐसी वृद्धि हो कि प्रजा को अपना सारा जीवन उपयोगी और भोग्य पदार्थों के ही पैदा करने में न बरबाद करना पड़े और कम्यूनिज्म ही श्रम संरक्षण है। इसका काम है श्रम जीवियों की दशा का सुधार और उनकी स्थिति का समुन्नत करना।

सोवियट प्रजातन्त्र में काम करने वालों को स्वतन्त्रता होती है और यही शासक श्रेणी के लोग होते हैं इसी से प्रकट है कि श्रमिक सर्वथा सुरक्षित रहते हैं, सताये या लूटे नहीं जा सकते। यही श्रमिक समुदाय की विजय है। लेकिन हमारा अभिप्राय यहां पर सर्व साधारण श्रमिक समुदाय से नहीं है, हम यहां उन लोगों की बाबत विचार करना चाहते हैं जो आकरों में, बड़े २ कारखानों में और वर्क शापों–लोहारी आदि के छोटे कर्म्य क्षेत्रों–में काम करते हैं। क्योंकि जो लोग वस्तुत हाथ से

किसी क्षेत्र में काम करते हैं उन्हीं पर उस क्षेत्र के नैसर्गिक परिकर का प्रभाव पडता है। फैक्टरियों, वर्कशापों में जो काम करते हैं उन्हें कलों के बीच में बुरे वातावरण में काम करना पडता है, यह भयानक परिस्थिति है। यदि यह हररोज बहुत देर तक काम करेंगे तो बहुत थक जायेंगे, इनकी शक्ति क्षीण और आयु कम हो जायगी। और उनका ध्यान एक ओर बहुत देर तक न रह सकने के कारण भी दुघटनायें बहुत बढ जायेंगी इस लिये इनके काम करने का समय बहुत विचार के साथ नियत करना उचित है। हम देखते हैं कि रूस अन्तर्गत 'नेवेस्की' के जहाज बनाने के कारखाने में (पीटरो ग्रेड में ही है) नीचे लिखे अनुसार दुर्घटनाएं हुईं।

सन	घटना की सख्या	श्रमिक सख्या	घटना प्रति १००० श्रमिक
१९१४	४३८६	६१८६	७०६
१९१५	४६८९	७००२	६६६
१९१६	२८३०	७५०२	३७१
१९१७	१२६६	६०४६	२१०

घटना इस लिए दिन दिन कम होती गई कि श्रमिकों की रक्षा के लिये कई विशेष अनुशासनों (measures) की सिल सिले वार जारी किया गया, तो भी १००० श्रमिकों में २१० घट नाओं का होना बहुत ही अधिक है। एक वार ब्रिटिश पार्लमेंट में रेमजे मेकडानल्ड ने बतलाया था कि जो १२०० आफसों में काम करने वाले आदमी मरे उनमें से ११०० इस कारण मरे कि

पूंजीपतियों ने आवश्यक सावधानी के नियमों के पालन में असावधानी की थी।

यदि यथारत सावधानी रक्खें और श्रमिकों की प्राण-रक्षा को अपना कर्तव्य समझें तो घटनायें (accidents) बहुत कम हो सकते हैं।

दूसरी विचारणीय बात है काम में संलग्न हानिकर वातावरण, व्यवसाय जनित रोग और तज्जनित मृत्यु।

लेजारेफ कहता है कि रूस की फास्फोरस बनाने वाली फैक्टरी में जहां कि श्रमिकों की रक्षा का कोई उपाय नहीं किया गया था श्रमिक ५ वर्ष में ही बेकार मुर्दों के समान हो जाता था। लोहे के खराद के काम में भी श्रमिकों की आयु घट जाती है फेफड़े के रोग से पीड़ित होकर मर जाते हैं। यही बात आफरों में, कांच के कारखानों में और अनेक प्रकार के कामों में देखी जाती है।

१६०० और १६०२ के बीच में इंगलैंड के अङ्क बतलाते हैं कि नीचे लिखे पेशे वालों में प्रति १००० कितने आदमी क्षई रोग से मरे। पादड़ी ५५ चीनी वर्तन व मिट्टी के वर्तन बनाने वाले २८५, किसान ७६ कम्पोजीटर ३००, बैरिस्टर वकील ६२, ब्रश बनाने वाले ३२५, सिविल सर्वेंट १२९ चाकू पर सान धरने वाले ५३३ कांच के कारखाने के श्रमिक २८३ आफरों म काम करने वाले ८१६

इस प्रकार हम अनेक देशों और जुदा२ अनेक कामों के करने वालों की मृत्यु संख्या दे सकते है, लेकिन पाठकों के विचार के लिए इतना ही काफी होना चाहिये।

अब देखना है कि रूस ने अपने श्रमिकों की रक्षा के लिए क्या २ प्रयत्न किये। आज तक भूमण्डल के किसी भी राष्ट्र ने ऐसे कानून अपने श्रमिकों की रक्षा के लिए नहीं बनाये जो सोवियट प्रजातन्त्र ने बनाये हैं। इस प्रजातन्त्र ने सब से पहले काम करने के घण्टों की हद्द बांधी।

१-श्रमिकों के काम करने की हद्द ८ घण्टे करके कानून बना दिया कि इससे अधिक श्रमिकों से काम न लिया जाय। दफ्तरों में काम करने वालों और मानसिक श्रम करने वालों के लिए ६ घण्टे काम करने की व्यवस्था की।

२-ओवर टाइम काम करने की कानूनी रोक कर दी। बहुत ही जरूरत पड़ने पर अनिवार्य दशा में अपवाद के तौर पर जो ओवरटाइम काम करने की गुञ्जायश कानून में रक्खी गई है उसकी मजूरी डेढ़गुनी मिलती है।

३-विशिष्ट हानिकर कामों के करने वाले श्रमिकों के काम करने के घण्टे और भी कम किये गये हैं। गैस के श्रमिकों से केवल ६ घण्टे और तम्बाकू के मजूरों से ७ घण्टे ही काम लेने का विधान किया गया।

४-नियमित रूप से ४२ घण्टे काम करने के बाद विश्राम का नियम है। शनिवार को २ घण्टे कम काम लिया जाता है।

जो श्रमिक रविवार को छुट्टी न ले सकें उन्हें उसके बदले दूसरे किसी दिन सप्ताह में आराम दिया जाता है।

५–साल में एक बार श्रमिकों को पूरे वेतन पर छुट्टी मिलती है। साधारणतयः साल में १ महीने की छुट्टी का कानून है परन्तु राष्ट्रीय कठिनाई के समय, बुरे वक्त में १२ दिन की छुट्टी का विधान है।

६–विशेष हानिकर कामों में लगे हुए मजूरों को १४ दिन की अधिक छुट्टी दी जाती है।

दूसरे स्त्री और बच्चा के सम्बन्ध में कई विशेष बातों का ध्यान रखा जाता है।

१–स्त्रियों से रात में काम नहीं लिया जाता न ओवर टाइम काम कराया जाता है। इनसे ठेके पर भी काम नहीं लिया जा सकता।

२ १६ वर्ष से कम के लड़कों को नियत रूप से श्रम में नहीं लगाया जाता। धीरे २ इन्हें हटाकर स्कूलों में भेजने की आयोजना होती है। इन्हें सहायता मिलती रहती है। लड़कों को हानिकर या अनिष्ट करने वाले व्यवसायों के काम में तो कदाचित नहीं लगा सकते।

३– १६ वर्ष से कम के बच्चों से केवल ४ घंटे काम लेने का विधान है। १६ से १८ वर्ष तक के लड़कों को छ घण्टे काम करना होता है।

मातृत्व की रक्षा के कानून नचे दिये जाते हैं। यह कानून बहुत ही जरूरी है :—

१-गर्भिणी और प्रसूतिका को चाहे वे स्वयम् काम करती हों चाहे काम करने वालों की वधू हों जब तक वह काम नहीं करती उन्हें लगातार भत्ता मिलता रहता है।

२-शारीरिक काम करने वाली गर्भिणीयों को यह भत्ता बच्चा पैदा होने के ८ सप्ताह पहले से ही मिलता है और वे काम से हटा दी जाती है, दिमागी काम करने वालियों को ६ सप्ताह पहले से यह भत्तां मिलता है।

३-बच्चा पैदा होने के बाद भी कम से ऊपर लिखे अनुसार ८ व ६ सप्ताह भत्ता मिलता है।

४-जो बच्चों को पालती हैं, उन्हें हर तीन घण्टे में आधे घण्टे का अवकाश दिया जाता है।

५- सभी माताओं को २४ रुबिल (रुबिल=अंगरेजी २६ पैंस) रोज बच्चा पैदा होने के दिन से ९ महीने तक बच्चों के पालन के लिए अधिक मिलता है साथ ही सत्र ७२० रुबिल बच्चे के वस्त्र आदि अनेकों कामों के लिये भी दिया जाता है।

अभी कई बातों में कानून के अनुसार कुछ काम नहीं बन सकते,पर धीरे २ यह त्रुटि दूर होती जा रही है जैसे कई व्यतिरिक्त दशाओं में ओवरटाइम काम करने की इजाजत है लेकिन इस इजाजत के अनुसार भी कोई किसी श्रमिक से साल

में ५० दिनसे अधिक ओवरटाइम काम नहीं करा सकता। १५ से १६ वर्ष तक के बच्चे ४ घण्टे श्रम कर सकते हैं लेकिन इसे एक दम रोकने का प्रबन्ध हो रहा है। साल में एक मास क आराम को घटा कर कुछ काल के लिए १५ दिन कर दिया गया है। रात का काम करने का समय बढा कर ७ घण्टे किया गया है। यह सब बातें अब हटती जाती हैं। जिन दिनों साम्राज्य वादियों के आक्रमण और अत्याचार रूस पर होते थे उन दिनों नियमों में यह अस्थिर परिवर्तन करने पडे थे। ज्यों ज्यों बाहिरी साम्राज्य वादियों के आक्रमण और धींगा धींगी का भय जाता रहेगा रूस में श्रमिकों को अत्यन्त सुख मिलेगा और अस्थिर परिवर्तन जो नियमों में हुए हैं, उन्हें रद्द करके मौलिक कानून के ही अनुसार सारे काम होंगे बल्कि और अधिक सुविधा की जायगी।

काम करने वालों की तन्दुरस्ती स्थिर रखनेके और अनेक उपाय किये जाते हैं। किसी किसी काम पर श्रमिकों को कपडा दिया जाता है जिस से कारखाने की खराबी का प्रभाव उन के वस्त्रों पर नहीं पडने पाता। दवाओं के खास प्रबन्ध हैं। श्रमिकों के ही पक्ष के निरीक्षक सर्वत्र निगरानी करते रहते हैं।

※ समाप्त ※